वैदिक धर्म प्रवेशिका

—विष्णुमित्र बी० ए०

वैदिक धर्म प्रवेशिका

(आचार भाग)

लेखक तथा प्रकाशक—

विष्णुमित्र बी० ए०

अध्यापक डी० ए० बी० हाईस्कूल

नई देहली ।

प्रथमवार { दयानन्दाब्द १०९ सन् १९३४ ई० । } मूल्य ।)

मुद्रक—
पं० शंकरदेव पाठक 'काव्यतीर्थ' शास्त्री
चन्द्र प्रिंटिंग प्रेस देहली।

प्राक्कथन

आर्य्य सज्जनो आर्य्य स्कूलों में धर्म शिक्षा पढ़ाते हुए मुझे एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसमें वैदिक-धर्मी का कर्त्तव्य और मन्तव्य सरल भाषा में युक्तियों द्वारा थोड़े शब्दों में बताया हो। इसी आशय से मैंने यह छोटी सी पुस्तक लिखने का साहस किया है। इसका पहिला भाग आपके हाथों में है। इसमें आर्य नवयुवकों को सम्बोधन करके उनके कर्तव्य बताये हैं। दूसरे भाग में मन्तव्यों पर कुछ लिखने का विचार है। यह पुस्तक १४ या १५ वर्ष के विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त होगी ऐसी मेरी सम्मति है।

इस पुस्तक में विशेषता यह रखी गई है कि मूल में केवल हिन्दी ही रखी है। वेद मन्त्रों और शास्त्रीय वचनों को ध्यान में रखते हुए उनका भाव ही दिया है। प्रमाण भाग नीचे चिह्न लगाकर फुटनोटों में दे दिया है। इससे संस्कृत न जानने वालों का पुस्तक पढ़ते हुए रस भंग न होगा और संस्कृत जानने वालों को शास्त्रीय और वैदिक प्रमाण ऊपर के कथन की पुष्टि में मिल जायेंगे। साथ ही मैंने अपने विचारों के स्रोत को बता कर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रकाश भी छुपे रूप में कर दिया है। प्रमाणों के अर्थ बताने का कार्य अध्यापक महोदयों के लिये छोड़ दिया है।

आशा है कि गुण ग्राही महानुभाव इस पुस्तक को अपनावेंगे और इसको अधिक लाभदायक बनाने के लिये अपनी अमूल्य सम्मति देकर मुझे कृतार्थ करेंगे ?

सितम्बर सन् १९३४,
डी. ए. वी. हाईस्कूल
नई देहली।

—विष्णुमित्र बी० ए०

वैदिक धर्म प्रवेशिका

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद

प्यारे विद्यार्थियो आप बड़े सौभाग्य शाली हैं; आपने ऐसे समय जन्म लिया है जब कि भगवान दयानन्द ने वेदों की दुन्दुभि बजा कर इस मृत प्राय हिन्दू जाति में दोबारा जीवन का संचार करा दिया है। आर्य्यसमाज ने ऋषि के चरण चिन्हों पर चल कर अपने परिश्रम से आपके लिये वैदिक धर्म का द्वार खोल दिया है। आपको क्या पता है कि आज से पचास वर्ष पहले के बालकों को किस प्रकार के विद्यालयों में पढ़ना पड़ता था। उनके समय में ऐसे विद्यालय नाम को भी न थे जहाँ कि सन्ध्या, हवन, धर्म शिक्षा के साथ २ अंग्रेज़ी आदि पढ़ाई जाती हो। उस समय अंग्रेज़ी के स्कूल बहुत थोड़े थे और वह भी उन लोगों के हाथ में थे जो हमारी चोटी काटने को हर समय तय्यार रहते थे इसलिये उन दिनों स्कूलों में पढ़ते हुए विद्यार्थियों के

लिये वैदिक धर्म के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करना असम्भव सा था। किन्तु आज कल की अवस्था भिन्न है। भारतवर्ष के शहर शहर में आर्य्य स्कूलों और कालिजों का जाल सा बिछ गया है जहां कि विद्यार्थियों को उच्च कोटि के वैदिक धर्मी बनाने में भरसक यत्न किया जाता है।

शायद इसी प्रकार के स्कूल या कालिज में आपके पिता या माता जी ने शिक्षा प्राप्त की है जो आप को भी सदाचारी, तपस्वी और विद्वान बनाने के लिए इस विद्यालय में भेजा है। हमें पूर्ण आशा है कि आपकी माता जी ने आपको अच्छी २ बहुत सी बातें सिखाई होंगी। आपको बड़ों का मान करना, धार्मिक और विद्वानों के सत्संग के लाभ[1] और सत्य तथा मिष्टभाषणादि[2] सद्गुण अवश्य समझाये होंगे। इसके पीछे आप के पिता जी ने भी आपको उदारता, धैर्य, निर्भयता और परिश्रम करने का खूब पाठ पढ़ाया होगा।

यदि इतना हो गया है तो आप बड़े अच्छे बालक हैं जिन को ऐसी अच्छी माता और पिता मिले हैं जिन्होंने अपने कर्तव्य को भली भांति समझ कर आपकी शिक्षा का बीड़ा

१ अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन ।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्यायशोबलम ॥ **मनु** ।

२ सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात सत्यमप्रियम ।
[illegible] न [illegible] ब्रूयादेष धर्म [illegible] ॥ **मनु** ।

उठाया है किन्तु अब आपकी अवस्था कुछ अधिक बातें सीखने की हो गई है और उनको अपने गृहस्थ के अनेक कार्य करने हैं अतः उन्होंने आपकी शिक्षा का भार हम लोगों पर डाला है। हम लोग भी बड़े हर्ष से इस सेवा को स्वीकार करते हैं और अपना बड़ा भारी गौरव समझते हैं कि आपके माता पिता ने अपने कलेजे के टुकड़ों को हमारे हाथ में सौंप कर हम पर इतना भारी विश्वास किया है। परमात्मा हमें बल दे कि हम आपके माता पिता की आशा को पूरा कर सकें और आपको सदाचारी, तेजस्वी, बल और विद्या से भरपूर करके उनको लौटा सकें। जिससे देश का भी भला हो और आप मान पूर्वक सुखमय धार्मिक जीवन व्यतीत कर सकें और साथ ही हमें यश मिले और आपके अच्छे कर्मों को देख कर लोग यह कहें कि धन्य हैं तुम्हारे गुरुजन जिन्होंने आपको ऐसी अच्छी शिक्षा दी। आओ हम मिल कर इस प्रयोजन के लिये परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करें। 'ओ३म् सह नौ यशः सह नौ ब्रह्मवर्चसम् ॥' 'हे जगदीश! सब ज्ञान के भण्डार परमात्मन्! हम गुरुओं और शिष्यों का पढ़ा पढ़ाया सफल हो वह ज्ञान संसार में सुख और शान्ति फैलाने वाला हो जिससे कि हमारी कीर्ति संसार में सुगन्ध की भाँति फैलती रहे और उस ज्ञान से हमारे

---

१ माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ चाणक्य।

हृदय प्रफुल्लित रहें, मन में सदा उत्साह हो और चेहरों पर सदाचार, आस्तिकता और सन्तोष की चमक हो।" प्यारे विद्यार्थियो! प्राचीन समय में हमारे पूर्वज शिक्षा का उद्देश्य यही समझते थे कि उससे सन्तान योग्य हो जावे। जब योग्य हो गये तो फिर रोटी का कोई फिकर नहीं होता था। प्रत्येक मनुष्य को चाहिये भी ऐसा ही कि अपने कर्तव्य का ध्यान रखे फल देना परमात्मा के भरोसे पर छोड़ दे।[1]

विद्यार्थियो! एक बात का सदा ध्यान रखो कि आप ने अपने जीवन को ऊँचा और पवित्र बनाने के लिए ही गुरुजनों का सत्संग स्वीकार किया है, उसको बिगाड़ने के लिए नहीं अतः बड़ी सावधानी से जो हमारे सद्गुण, हों उन्हीं को ग्रहण करें बुरी बातों को न लें[2]। यह कोई युक्ति नहीं है कि क्योंकि हमारे गुरु इस बात को करते हैं इस लिए यह अच्छी ही होगी। आजकल दुर्भाग्यवश बहुत से अध्यापकों को गन्दी गाली देने, सिगरटादि बुरी चीज़ों का सेवन करने, विदेशी ढंग का रहन सहन वेष भूषा बना कर देश द्रोही बनने या इस से भी बुरे कुकर्म करने का अभ्यास हो जाता है, फिर भी वह लोग किसी प्रकार शिक्षा कार्य में घुस बैठते हैं आप उनके गुणों की ही ओर ध्यान

१ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥ भग्वद्गीता।

२ यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।

तैत्तिरीयोपनिषद्।

दीजिए। जिस प्रकार शहद की मक्खी फूल में से मिठास को ले कर शेष वहीं छोड़ देती है वैसे ही आप भी ऐसे अध्यापकों से विद्या लेकर शेष संस्कार किसी दूसरे अच्छे अध्यापक से लें। आंख मींच कर बिना विचारे किसी के पीछे लगना मनुष्यपन से गिरना है। किसी ने ठीक कहा है कि "पानी पीजे छान कर और गुरु कीजे जान कर"। सो आशा है आप इस बात को सदा ध्यान में रक्खेंगे क्योंकि आपका जीवन अभी कोरे कागज़ की भांति है उस पर जैसे संस्कार आप डालेंगे वैसे ही आप मनुष्य बनेंगे और आप यह चाहते ही हैं कि हम अच्छे मनुष्य बनें अतः अच्छे मनुष्यों के जो गुण होते हैं उन्हीं को अपने में धारण करो फिर अच्छे मनुष्य बनने में कोई बाधा नहीं। हम आप को देश की बड़ी भारी सम्पत्ति समझते हैं आगामी का भारतवर्ष आप का ही देश होगा अतः हम लोग भी अपना धर्म कर्म देश सेवा इसी में समझते हैं कि आप को उच्च कोटि के मनुष्य बनादें।

1 "The Children of to day are the leaders of to morrow" Nations are built on the cradles.

2 Let us live for our children [**Froebal**]

यज्ञोपवीत

प्यारे विद्यार्थियो ! आपने अपने उद्देश्य को भली भाँति निश्चित कर लिया है कि आपको एक आदर्श वैदिक धर्मी बनना है। अब आप को वैसे ही कार्य करने होंगे और वही नियम पालन करने होंगे जो कि आपको इस महान उद्देश्य की ओर ले जा सकें। वैदिक धर्म के अनुसार मनुष्य जीवन एक यज्ञ है इस यज्ञ को विधिपूर्वक समाप्त कर लेना ही इस जीवन की सफलता है। आपने अपनी इतिहास की पुस्तकों में शायद यह पढ़ा होगा कि प्राचीन समय में पशुओं को मार कर उनको देवताओं की भेंट चढ़ाया जाता था उसी को यज्ञ कहते हैं। यह बात बिल्कुल झूठ है। इतिहास प्रायः विदेशी लोगों ने लिखे हैं उन्हीं की देखा देखी कुछ भारतीयों ने भी उन्हीं बातों को लिख मारा है। इन लोगों को अपने शास्त्रों का कुछ भी ज्ञान नहीं था नहीं तो वह ऐसा कभी न लिखते। यज्ञ शब्द के मुख्यतया तीन अर्थ हैं देवपूजा, संगतिकरण और दान। जिन कामों को हम यह विचार कर करते हैं कि यह परमात्मा की आज्ञा है इस को करना ही चाहिए वह सब यज्ञ के नाम से पुकारे जा सकते हैं। इसी प्रकार भले मनुष्यों का सत्संग करके अच्छे गुण ग्रहण करना और अपनी शक्तियों को दूसरों के उपकार में लगाना सब यज्ञ हैं। इस प्रकार प्रत्येक वैदिकधर्मी का जीवन आरम्भ से लेकर अंत

तक यज्ञमय होना चाहिए। इस भाव को मोटा रूप देने के लिए ऋषियों ने अनेक प्रकार के यज्ञ आर्यों के लिए बताए हैं उन में से कुछ यज्ञ आप भी किया करेंगे। इस बात को सूचित करने के लिए कि आप भी अपने जीवन को यज्ञमय बनाना चाहते हैं आप को यज्ञोपवीत अर्थात् यज्ञ का चिन्ह धारण कराया जाता है।

आप में से कई एक स्काउट भी हैं सो आप को पता ही है कि स्काउट बनने से पहिले आप के स्काउट मास्टर जी आप को एक विशेष प्रकार की वर्दी पहनने को कहते हैं उस के बिना आप को अपने ग्रुप में नहीं लेते इसी प्रकार पुलिस, फौज, स्टेशनादि पर काम करने वाले मनुष्यों की विशेष प्रकार की वर्दी होती है; इसका बड़ा लाभ है। एक तो यह कि उन लोगों को वर्दी पहिन कर अपने कर्त्तव्य का बहुत ध्यान रहता है। उस अवस्था में वह दूसरे लोगों से डरते रहते हैं कि कहीं अपने कर्त्तव्य से गिर गए तो उनकी दृष्टि मे हम छोटे और नीच हो जावेंगे। दूसरे और मनुष्यों को उन से यथायोग्य व्यवहार करने में सुभीता हो जाती है। उनकी वर्दी से उनको तुरन्त पहिचाना जा सकता है। फिर उनको उचित मान मिलता है और उनसे जिस सहायता की आशा की जाती है वह भी लोग ले सकते हैं। इसी नियम के अनुसार हमारे ऋषियों ने वैदिक धर्म की मुख्य ३ बातें इस तीन तार के धागे अर्थात् यज्ञोपवीत में बाँध कर हमारे गले में लटका दी हैं जिससे कि रात दिन वह हमें

स्मरण रहें और उन्हीं के अनुकूल हम आचरण करने का प्रयत्न करते रहें। आप पूछेंगे कि इस तीन तार के धागे से वैदिक धर्म की मुख्य बातें कैसे याद रहेंगी सो सुनिये।

यह यज्ञोपवीत पहली बात आपको यह सिखाता है कि आपके सिर पर तीन ऋण हैं अर्थात् पितृ ऋण, देव ऋण और ऋषि ऋण। इन सब ऋणों को चुकाने से मनुष्य का जीवन बहुत उच्च हो जाता है। इसी प्रकार यह तीन तार इस बात का संकेत करते हैं कि आपके वास्ते वेदों की तीन प्रकार की विद्या अर्थात ज्ञान कांड, कर्म काण्ड और उपासना काण्ड जानना अत्यावश्यक है। ऋग्वेद ज्ञान प्रधान है, यजुर्वेद कर्मप्रधान है, सामवेद उपासना प्रधान है और अथर्ववेद में मिश्रित रूप में सब प्रकार के मन्त्र आते हैं इसी भाव को लेकर बहुत से ऋषियों ने तीन वेद या वेदत्रयी का विधान किया है इससे यह न समझना कि वेद तीन हैं अपितु यह कि वेद में तीन विद्याएँ हैं। यज्ञोपवीत के तीन तार यह भी बतलाते हैं कि इस के धारण करने वाले तीनों वर्णों में से किसी एक के नियमों का भली भांति पालन करें अर्थात् उनको चाहिये कि आदर्श ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य बनने का पूरा यत्न करें। यही तीन तार यह भी बतलाते हैं कि इसको धारण करके प्रत्येक व्यक्ति तीन आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ नियमपूर्वक पूरा करे और फिर यदि पूर्ण वैराग्य हो जावे तो संन्यास आश्रम में शिखा और यज्ञोपवीत का भी त्याग कर दे। अब आपने देख लिया

कि यह तीन तार का यज्ञोपवीत कितनी सार-गर्भित वस्तु है। इस में प्राचीन ऋषियों ने वैदिक धर्म की प्रायः सभी बातें रखदी हैं। तभी तो महाराणा प्रताप, शिवा जी और गुरु गोविन्दसिंह आदि महानुभावों ने इसकी रक्षा के लिए इतने कष्ट सहे और वह आज समस्त हिन्दु-जनता के मान के पात्र बने हुए हैं। जो लोग फैशन की गुलामी में फंस कर या आलस्य से इस का त्याग कर देते हैं उनको वैदिक धर्म से विमुख ही समझना चाहिए। इस लिए आप से बड़े अनुरोध के साथ प्रार्थना है कि यदि आपने अब तक यज्ञोपवीत धारण नहीं किया हो तो बहुत शीघ्र ही अपने धर्म गुरु से संस्कार करवा के इसको धारण करो और इस के सम्बन्ध में जो उपदेश वह दें उसको ध्यान से सुनकर अपने जीवन में घटाओ। यज्ञोपवीत धारण करने के संस्कार को उपनयन संस्कार कहते हैं। 'उप' का अर्थ हैं 'पास' और 'नयन' के अर्थ हैं 'ले जाना' सो 'उपनयन' के अर्थ पास ले जाना है। अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् शिष्य अपने गुरु के पास ले जाए जाते थे और फिर उन्हीं की देख रेख में रात दिन रहते थे। आप भी दिन का अधिक भाग हमारे पास बिताते हैं। हम आप को खाने पीने और आराम करने के लिए आप के माता पिता के पास भेज देते हैं शेष समय अपने पास रख कर आप के आत्मा और शरीर को उन्नत करने का यत्न करते हैं। यही परिपाटी प्राचीन समय में गुरुकुलों

की थी उस समय रहन सहन और खाने पीने में बहुत सादगी थी आज कल आडम्बर बढ़े हुए हैं अतः आप अपने जीवन को सादा बनावें फिर हम आप को ब्रह्मचारी के नाम से पुकारा करेंगे । याद रक्खो यह बड़ा पवित्र नाम है इस नाम को धारण कर के आप अपने ऊपर बड़ी भारी जिम्मेवारी ले रहे हैं। आप को अपनी प्रत्येक चेष्टा वैदिक धर्म के अनुकूल बनानी होगी । कई बार आप को जान बूझकर आराम का रास्ता छोड़ना और कष्ट को स्वीकार करना होगा किन्तु इस का परिणाम बहुत अच्छा होगा ।[1]

प्यारे ब्रह्मचारियो ! यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में शास्त्रों के कई एक शब्दों का प्रयोग ऊपर के उपदेश में किया गया है उन में से बहुत से शब्द आपने सुने भी न होंगे या उन का ठीक भाव न समझ कर आप के मन में उनके समझने की जिज्ञासा होगी इस लिए आओ एक २ कर के उन सब शब्दों को समझलो ।

१ यत्तदग्रे विषमिव परिणामे ऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं आत्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ भगवद्गीता ।

पंच महायज्ञ

ऊपर कहा गया है कि यह तीन तार का धागा हमारे लिए यज्ञ का अधिकार दिलाता है प्रत्येक यज्ञोपवीतधारी को पांच यज्ञ करने अवश्यक हैं। इन के नाम यह हैं (१) ब्रह्म यज्ञ (२) देव यज्ञ (३) बलिवैश्वदेव यज्ञ (४) पितृ यज्ञ (५) अतिथि यज्ञ।

ब्रह्म यज्ञ

ब्रह्म यज्ञ में सन्ध्योपासना और वेद पाठ तथा शास्त्रों का स्वाध्याय सम्मिलित हैं। आप स्कूल में प्रतिदिन सन्ध्या करते हैं। अब तक तो रजिस्टर में अनुपस्थिति लगने के भय से सन्ध्या करते होंगे किन्तु अब से इस को अपना धर्म समझना। इस का समझना बड़ा सुगम है। परमात्मा सब शक्तियों का भण्डार है उसी ने संसार के सब पदार्थ रच कर हम जीवों के सुख के लिए दिये हुए हैं। वह सब स्थानों पर प्रत्येक चीज़ में रमा हुआ है[१]। उसी ने सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को वेद ज्ञान देकर कृतार्थ किया[२]। उसके नाम और गुणों का स्मरण करने से हमारे मन में उत्साह, पवित्रता और निर्भयता उत्पन्न

---

१ ईशावास्यमिदं सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत। यजुर्वेद।

२ स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। योग दर्शन।

होती है । उसके उपकारों को याद करते ही हमारा मस्तक कृतज्ञता से झुक जाता है । पाप से घृणा और पुण्य में श्रद्धा उत्पन्न होती है ऐसे पतित-पावन प्रभु की उपासना बड़ी श्रद्धा से करनी चाहिए इस से हमारा ही कल्याण है उस का कोई लाभ नहीं है[१] । जिस प्रकार यदि कोई मनुष्य सर्दी का सताया हुआ अग्नि का आश्रय लेता है तो आग पर उस का कोई अहसान नहीं है वह अपनी सर्दी को हटाने के लिए ऐसा कर रहा है, ऐसे ही हम भी अपने कल्याण के लिए परमात्मा की भक्ति करते हैं । परमात्मा की भक्ति से मनुष्य में एक विचित्र बल आ जाता है इस बात को एक कथा से स्पष्ट किया जाता है ।

एक ब्राह्मण को एक बार उसके यजमानों ने ५००) पांच सौ रुपया दान दिया । उस ब्राह्मण की एक कन्या विवाह के योग्य हो रही थी उसने विचार किया कि रुपया घर में ले जाने से खर्च हो जावेगा यदि इस को किसी साहूकार के पास रख दूं तो लड़की के विवाह में काम आ जावेगा । ऐसा सोच कर ब्राह्मण ने एक साहूकार के पास वह रुपया जमा करवा दिया । जब कन्या के विवाह के निकट ब्राह्मण ने सेठ से रुपया मांगा तो

१ न वारे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति ॥१॥ समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् । न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्त दन्तःकरणे गृह्यते ॥२॥ वृहदारण्यकोपनिषद ।

उसके मन में पाप आ गया। कहने लगा पण्डित जी आपने या आप के बाप दादा ने कभी पांच सौ रुपया देखा भी है या वैसे ही नाम लगाते हो। ब्राह्मण बेचारा चकित हो गया कि यह क्या हुआ। किंकर्तव्य विमूढ़ हो कर रोने लगा तो अड़ौस पड़ौस के लोगों ने उसको राजा के पास जाने की सम्मति दी। वह अभागा राजा के पास गया और अपना दुःख कह सुनाया। राजा ने पूछा कि क्या आप के पास सेठ के हाथ की रसीद है या आप के कोई गवाह हैं जिन के सामने आपने सेठ को रुपया दिया था। भोला ब्राह्मण लेन देन के इन नियमों से अनभिज्ञ था अतः उस के पास न तो रसीद निकली और न ही कोई साक्षी दे सका। राजा ने सोचा कि ब्राह्मण है तो सच्चा किन्तु बिना प्रमाण के यदि मैं निर्णय देने लगूं तो प्रजा में गड़ बड़ मच जायगी लोग आपस में एक दूसरे पर निर्मूल अभियोग चलाने लग जावेंगे।

राजा ने कुछ देर विचार करके ब्राह्मण के कान में कुछ कह कर उस को बिदा कर दिया और नगर में घोषणा करवादी कि कल प्रातःकाल महाराज हाथी पर चढ़ कर शहर का निरीक्षण करेंगे। यह सूचना मिलते ही सब शहर सज गया दुकान दारों ने अपनी दुकानें राजा को प्रसन्न करने के लिए खूब सजाईं। प्रातःकाल महाराज एक सुन्दर हाथी पर चढ़कर साथ में बहुत से दरबारी लोगों और कुछ घुड़चढ़े सिपाहियों को लेकर बड़ी सजधज के साथ महल से निकले। इस सवारी

के देखने के लिए शहर के नर-नारी बाज़ार में दुकानों की छतों पर चढ़ गए। जब सवारी सेठ की दुकान के पास पहुँची तो राजा ने ब्राह्मण को वहां खड़े देखा। पीलवान को कह कर हाथी को बैठा दिया उतर कर ब्राह्मण को बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम किया और हाथी पर अपने साथ चढ़ा लिया। सवारी की समाप्ति पर उसको उतार कर उसके घर भेज दिया।

राजा के इस व्यवहार को देख कर सेठ के मन में बड़ा भय उत्पन्न हुआ कि इस ब्राह्मण को मैंने साधारण समझा था यह तो राजा का मित्र है। यदि इस ने मेरी बात राजा से कह दी तो बहुत आपत्ति का सामना करना पड़ेगा। सारांश यह है कि सेठ जी को उस दिन न तो भूख लगी और न नींद आई। अगले दिन प्रातः काल सात सौ रुपये लेकर सेठ ब्राह्मण के घर पहुँचा और हाथ जोड़ कर कहने लगा कि महाराज आप का रुपया मैंने बड़ी बही में लिखा हुआ था मैंने छोटी बही में देखा तो भ्रम हो गया सो क्षमा करें यह आप के पांच सौ रुपये हैं और जैसी कन्या आप की वैसी ही मेरी भी यह कन्या है यह दो सौ रुपया मेरी ओर से इस को दे दें।

ब्रह्मचारियो! आपने देखा कि राजा के संसर्ग से उस निर्धन ब्राह्मण की सेठ के मन में कैसी धाक बैठ गई। यदि कोई मनुष्य अपना नाता सब राजाओं के राजा महाराजाधिराज परब्रह्म परमात्मा से जोड़ ले तो अनुमान करलो उसकी धाक कैसी

होनी चाहिए इसी लिए आप से सन्ध्या करवाई जाती है कि आप परमात्मा के स्वरूप को अपने में धारण करें। उसके उच्चगुणों के भागी बनें। इस बात में आप की भलाई है और न करने से आप की ही हानि है[1] इस लिए आज से प्रण करलो कि बिना सन्ध्या किए कभी भोजन नहीं करोगे। क्योंकि शरीर को पालना ही मनुष्य का धर्म नहीं है पहले आत्मा को भोजन दो फिर शरीर का नम्बर है और सन्ध्या करना ही आत्मा को भोजन देना है। सन्ध्या में बैठ कर मन्त्रों के पाठ के साथ २ उसके अर्थों पर खूब विचार करो उन में पापों से बचे रहने के उपाय लिखे हुए हैं। प्रातः काल की सन्ध्या रात्रि के और सायं काल की दिन के पापों को नष्ट कर देती है[2]।

यहां पर एक बात मे बहुत ध्यान रखने की आवश्यकता है कि वैदिक धर्मानुसार किये हुए पाप और पुण्य का फल अवश्य मिलता है फिर मनु जी ने यह कैसे लिख दिया कि प्रातः काल की सन्ध्या रात्रि और सायंकाल की दिन के दोष दूर कर देता है। इस का अभिप्राय यह है कि मानलो कि किसी व्यक्ति ने दिन में मन वचन या काया से कोई बुराई की, सायंकाल जब वह सन्ध्या में बैठेगा तो उस को वह बुराई बुरी तरह से

---

१ यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्यु । यजुर्वेद ।

२ पूर्वा संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।

पश्चिमांतु समासीनो मलंहन्ति दिवा कृतम । मनु ।

खटकेगी और परमात्मा को अपने अन्दर का भेद जानने वाला समझ कर उस को बड़ी लज्जा आवेगी फिर वह सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करेगा कि फिर कभी उस बुराई को न करे इस बुद्धि से यह कहा गया है कि सन्ध्या पापों को नष्ट कर देती है इस बात को एक कल्पित कथा से स्पष्ट किया जाता है:—

एक मनुष्य को सन्ध्या करने में बड़ी श्रद्धा थी। वह नित्य प्रति सायं प्रातः नदी के किनारे जाकर स्नान करता और बड़े भक्ति भाव से परमात्मा की उपासना करता था। दुर्भाग्यवश उसको चोरी की भी आदत पड़ी हुई थी जो कि बार २ यत्न करने पर भी नहीं छूटती थी। जब वह सन्ध्या करने जाता तो उसको नित्य ही एक बुढ़िया एक काली और मैली कुचैली चादर धोती हुई मिला करती थी। उस मनुष्य को बड़ा आश्चर्य होता था कि यह बुढ़िया इस चादर को हर रोज़ दो बार धोती है फिर भी यह चादर वैसी ही मैली दिखाई देती है इस का न जाने क्या कारण है। एक दिन साहस कर के उसने बुढ़िया से पूछा कि माई तू क्या काम करती है जिससे तेरी चादर पर हर रोज इतना मैल चढ़ जाता है। बुढ़िया ने कहा बेटा अपना काम करो यह पूछ कर क्या लोगे मुझ अभागिन के कर्मों में सदा मैल धोना लिखा है। उस के फिर अनुरोध करने पर उसने कहा कि मैं सन्ध्या हूँ और यह चादर तुम्हारा हृदय है। जब तुम सायं प्रातः भक्तिभाव से ईश्वराराधन करते हो तो मेरा कर्तव्य हो जाता है कि

तुम्हारे हृदय की सब मैल छुटा दूं किन्तु तुम ऐसे निर्दयी हो कि उसे चोरी की वासनाओं से मैला करके दो बार मेरे पर यह बेगार डाल देते हो । बेटा मैं बुढ़िया हूं मुझे तुम्हारे निमित बहुत काम करना पड़ता है कृपा करके या तो मुझे छोड़ दो फिर तुम्हारे मैले मन से मुझे कोई लज्जा न आवेगी और यदि मुझे नहीं छोड़ते तो इस पापिन चोरी को अन्तिम नमस्ते कह दो जिससे मैं तुम्हारी और भलाई कर सकूं । उस व्यक्ति के हृदय पर बिजली सी टूट पड़ी उसको चोरी से इतनी घृणा हो गई कि उसका मूल नाश ही कर दिया । यह कथा वास्तविक नहीं है किन्तु बड़ी शिक्षा-प्रद है इससे आप समझ गए होंगे कि सन्ध्या करने से मनुष्य के पाप कैसे नष्ट होते हैं । अब मुझे आशा है कि आपके मनमें सन्ध्या के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई है; उसे आप कभी भी न छोड़ेंगे । यह भी याद रखें कि यज्ञोपवीत धारियों की बिरादरी का यह नियम है कि यदि कोई सन्ध्या न करे तो उसको अपने में से निकालकर नीच समझो[1] सो आपसे आशा की जाती है कि अपने को ऐसे कड़े दण्ड का भागी कभी भी न बनावेंगे ।

ब्रह्म यज्ञ का दूसरा अंग वेदादि शास्त्रों का पढ़ना है । सृष्टि

---

१ न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स साधुभिर्वहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ मनु ।

के आरम्भ में परमात्मा ने अपनी अपार दया से हम जीवों के कल्याण के लिए अपनी वेद विद्या का प्रकाश किया था उसी विद्या को हमारे ऋषि महर्षि लोग प्राचीन समय से पढ़ते और पढ़ाते चले आये हैं। उस विद्या में मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने की बड़ी अच्छी विधि बतलाई है। आज-कल संसार में बड़ी अशान्ति फैली हुई है। लोगों के पास बहुत सा रुपया, अच्छे २ मकान, सवारी, भोजन वस्त्र होने पर भी वह अपने जीवन में मिठास अनुभव नहीं करते¹ इसका कारण यही है कि वह लोग वेद विद्या से वंचित हैं। वास्तविक सुख और शान्ति आत्मा में निवास करते हैं बाह्य जगत् में नहीं और वह आत्मिक ज्ञान वेद शास्त्रों के पढ़ने से मिलता है।

इस शास्त्रीय ज्ञान के अभाव में आज संसार में कोलाहल मचा हुआ है। प्रत्येक जाति और व्यक्ति की मांग इतनी बढ़ी हुई है कि बिना अपने पड़ोसियों को सताए पूरी हो नहीं हो सकती। चालाक आदमी भोले आदमियों का खून पी रहे हैं और बलवान निर्बलों को सता रहे हैं। यह सब इसलिये है कि संसार को मनुष्य जीवन के असली उद्देश्य का पता नहीं,

---

१ प्रज्ञाप्रसादमारुह्य ह्यशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञो नुपश्यति॥

। योगदर्शन व्यास भाष्य।

उसकी सब चेष्टाएं उलझन में पड़ने की हैं। यदि आप इस उलझन में बचकर आत्मिक सुख लाभ करना चाहते हैं और समय आने पर उस सुख का प्रसाद औरों को भी देना चाहते हैं तो आज से ही नियम करलो कि वेद और शास्त्रों के बचनों का नित्य पाठ किया करोगे। यह पुण्य पाठ आपके अन्दर अच्छे २ भाव उत्पन्न कर देगा जिससे कि आपका चरित्र इतना ऊँचा हो जावेगा कि आप संसार के किन्हीं विघ्न-बाधाओं से न घबरावेंगे। बड़े २ प्रलोभनों, भय और आपत्ति के समय आप न्याय के मार्ग पर चट्टान की तरह स्थिर और अटल खड़े रहेंगे[1]। पढ़ाई का उद्देश्य केवल यह नहीं है कि धन ही कमाते रहो, या परीक्षा में बहुत नम्बरों से पास होकर बड़ी २ नौकरी लेलो। नौकरी लेना कोई बुरी बात नहीं किन्तु नौकरी को ही सब कुछ समझ लेना भारी भूल है[2]। याद रखो मनुष्य जीवन बड़ा दुर्लभ है[3]। इसको

१ निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा ॥ भर्तृहरि ।

2 'A man lives by bread but not by bread alone.' (Bible)

३ महता पुण्यपण्येन क्रीतेयं कायनौस्त्वया ।
पारं दुःखोदधेर्गन्तुं तर यावन्न भिद्यते ॥

। नीतिवचन ।

केवल खाने, पीने, सोने में मत बिता देना, यह तो पशु भी कर सकते हैं। केवल धर्म का ज्ञान है जो कि मनुष्य को पशुओं से पृथक् करता है। नहीं तो भोग भोगने में मनुष्य पशुओं से कभी भी नहीं जीत सकता। सारांश यह है कि नित्य प्रति वेद और शास्त्रों के विचारों का स्वाध्याय करके अपने विचार अभी से ठीक कर लो जिससे कि आपका भावी जीवन सुखमय हो।

देवयज्ञ

ब्रह्मयज्ञ वैयक्तिक कर्म है। इस से केवल अपने व्यक्ति की ही उन्नति होती है। इसके पीछे देवयज्ञ अर्थात् हवन की बारी है। इस यज्ञ के द्वारा हम राष्ट्र या जाति की सेवा करते हैं। क्योंकि जिन पदार्थों को हम अग्निमें डालते हैं उन पर से अपना स्वत्व हटा कर सब संसार का अधिकार कर देते हैं। हवन में डाले हुए द्रव्य बिना भेद भाव शत्रु मित्र सब को वायु द्वारा प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिए अग्नि को संस्कृत में हव्यवाट भी कहते हैं क्योंकि यह हवि को इधर उधर फैला के सब जगह पहुँचा देती है। यह यज्ञ भी वैदिकधर्म का एक बड़ा अङ्ग है। जब प्राचीन समय में यहाँ आर्य्यों का राज्य था तो प्रत्येक व्यक्ति को हवन करना आवश्यक था[1]। उस समय वायु शुद्ध होने से रोग नहीं होते थे। समय पर वर्षा होने से अन्न बहुत होता था

---

1 न मे स्तेनो जनपदे न मद्यपो न कदर्यो नानाहिताग्निर्नाऽवि-द्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः। महाराज अश्वपति।

घर २ में इतने पशु थे कि घी दूध पर्याप्त मिलता था उसमें खूब हवन किया जाता था उस समय यज्ञ न करने वाला दण्डनीय समझा जाता था[1]। उस समयको स्वर्णयुग कह सकते हैं क्योंकि सब संसार के मनुष्य मिल कर परिवार की भाँति रहते थे; एक दूसरे के सुख दुःख को समान समझते थे। सत्संग द्वारा बड़ी २ विद्याओं का प्रचार होता था इसी कारण यह आर्यजाति संसार की धार्मिक गुरु और राष्ट्रीय नेता समझी जाती थी[2]।

आज कल साइंस का युग है जब तक किसी बात पर उस की छाप न लगे लोग उस पर कम विश्वास करते हैं अतः आइए यज्ञ के विषय में साइंस की दृष्टि से कुछ विचार करें।

कई लोग हवन को इस वास्ते व्यर्थ समझते हैं कि इस में घी जैसी कीमती चीज़ें डाल कर खराब की जाती हैं। उन को यह सोचना चाहिए की कैमिस्ट्री (रसायन शास्त्र) के नियमानुसार संसार में न तो कोई चीज़ वास्तव में उत्पन्न होती है और न नष्ट ही होती है। हम लोग मोटी बोलीमें जिन चीज़ों का पैदा होना या नष्ट होना कहते हैं वह केवल रूप या स्थान का परिवर्तन है। जब हम कहते हैं कि अमुक आदमी ने अपना धन नष्ट कर दिया तो इस का यह अभिप्राय नहीं है कि उस का

१ तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥ भगवद्गीता।

२ एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

धन अब कहीं भी न रहा अपितु इसका यहां तात्पर्य है कि वह धन उसके पास न रहकर कहीं और चला गया। इसी प्रकार अग्नि में डाले हुए पदार्थ नष्ट नहीं हो जाते बल्कि अग्नि द्वारा सूक्ष्म होकर वायु में दूर २ फैल जाते हैं और प्राणी मात्र के काम में आते हैं। जो चीज़ जितनी सूक्ष्म होगी उतना ही अधिक असर दिखलावेगी इस के लिए कुछ उदाहरण उपयुक्त होंगे।

एक चम्मच घी का यदि चार कटोरे दाल में छौंका लगाया जाय तो सब दाल बहुत स्वादिष्ट हो जाती है क्योंकि उस अवस्था में घी सूक्ष्म होके दाल के दाने २ में व्याप्त हो जाता है किन्तु वही घी यदि ठण्डा हो तो एक कटोरे दाल को भी सुगंधित न कर सकेगा।

संखिया एक ज़हरीली वस्तु है उसके खाने से मनुष्य मर सकता है किन्तु यदि विधिपूर्वक ठीक मात्रा में उसे खाया जाय तो वही संखिया कुष्ठ जैसे रोगों की निवृत्ति भी कर सकता है। किन्तु जितने संखिये को खा कर मनुष्य जीवित रह सकता है उसी संखिये को यदि हाइडरोजन के साथ मिलकर एक गैस जिसका नाम Arseniorated hydrogen है बन जाय तो एक फ़ौज की समाप्ति कर सकती है। इसी प्रकार की गैस का योरोप के महायुद्ध में प्रयोग भी किया गया था इस से यह बात भली भांति समझ में आगई होगी कि स्थूल अवस्था में पदार्थ इतना प्रभाव नहीं रखता जितना कि सूक्ष्मावस्था में। इस से समझ

लेना चाहिए कि हवन में डाला हुआ पदार्थ संसार का कितना उपकार करता है क्योंकि इस में तीन प्रकार के द्रव्य होते हैं; एक पुष्टिकारक जैसे घी, मेवे चीनी आदि, दूसरे सुगंधिदायक जैसे कपूर, चन्दन, केसर इत्यादि और तीसरे रोगनाशक जैसे चिरायता गिलोय इत्यादि। यह सब पदार्थ अग्नि में पड़कर जो गैस उत्पन्न करते है वह प्राणियों के वास्ते अत्यन्त उपयोगी है इस लिए जो मनुष्य हवन करता है वह प्राणीमात्र का बड़ा उपकार करता है।

यह देवयज्ञ का केवल छोटा सा रूप दिखलाया गया है। इस मे ऊँचा विचार इस में यह है कि मनुष्य प्रत्यक्ष सुख की अपेक्षा परोक्ष सुख का अधिक मान करना सीखता है[1]। यही सच्ची आस्तिकता है। अपने द्रव्य को सर्व साधारण की भलाई में लगा कर उस के आत्मा को धर्म का पक्ष लेने का अभ्यास हो जाता है। फिर वह बड़े २ त्याग भी हंसता खेलता कर सकता है। आप जानते हैं कि "अयन्त इध्म आत्मा"—इत्यादि मन्त्र से कई वार आहुति दी जाती है। इस का कारण यह है कि यह मन्त्र यज्ञ के वास्तविक अभिप्राय का द्योतक है। जब किसी जाति या राष्ट्र का बहुत बड़ा कार्य अटक रहा हो उस समय साधारण बुद्धि के मनुष्य उस कार्य की सफलता के लिए त्याग करने पर उतारू नहीं होते। किन्तु यह मन्त्र ऐसे समय के लिए

१ परोक्षप्रिया हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ॥ शतपथ ब्राह्मण।

प्रत्येक प्राणी को यह भावना रखने के लिए उपदेश देता है कि हे परोपकार की अग्नि ! सब से पहिले मैं तेरा ईन्धन बनता हूँ मुझ में तू खूब बढ़ और फिर हम सब को धन धान्य पशु आदि से खूब बढ़ा। परोपकार का कितना सुन्दर पाठ है। इस मन्त्र के *भाव को यदि प्रत्येक आर्य बालक अपने मन में धारण करले तो अवश्य इस जाति का बेड़ा पार हो जाय।*

यदि साधारण बुद्धि से देखा जाय तो भी हमारे वास्ते वायु शुद्धि अत्यावश्यक है। हम रात दिन अपने शरीर और श्वास से अनेक प्रकार का गन्द वायु में मिलाते रहते हैं उसकी निवृत्ति न करना रोगों को बुलावा देना है। वेदों में जल, वायु, अग्नि, आकाशादि को देवता इसलिये कहा है कि हमारा उपकार करते रहते हैं। इनको अपने शरीर द्वारा गन्दा करके हम इन के ऋणी हो जाते हैं उस ऋण को अग्निहोत्र करके उतारना हमारा कर्त्तव्य है यदि ऐसा न करें तो परिणाम अच्छा नहीं होता।

आशा है कि उपरोक्त बातों से यज्ञ अर्थात् हवन की महिमा भलीभाँति समझ में आगई होगी। आशा है कि आप लोग यथासम्भव और यथाशक्ति इसको अवश्य किया करेंगे और इसके अन्तर्गत जो सूक्ष्म भाव परमार्थ और परोपकार का है उसको अपने आत्मा में अवश्य धारण करेंगे। यही मार्ग है जिससे संसार के बड़े मनुष्यों ने जाति सेवा द्वारा नाम पाया है।

पितृयज्ञ

तीसरा यज्ञ पितृयज्ञ है अर्थात् अपने माता, पिता, दादा, दादी आदि बड़े मनुष्यों का सत्कार, मान सेवा करना पितृ यज्ञ कहाता है। यह सब को पता है कि माता पिता सन्तान से कितना प्रेम करते हैं उन के वास्ते अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हैं। माता बच्चे को नौ महीने तक पेट में रखती है फिर पैदा होने पर उसको अत्यन्त कष्ट होता है। उसके पालन पोषण में रात दिन एक कर देती है। उनके लिये अपना सब सुख छोड़ देती है। रात को सर्दियों में बच्चा बिस्तर में लघुशंका कर देता है तो माता गीले स्थान में आप हो जाती है और बच्चे को सूखे स्थान पर कर देती है। घर में कोई अच्छी चीज़ खाने की आवे तो उसको बच्चों के लिए बचा रखती है, आप नहीं खाती।

इसी प्रकार पिता भी बच्चों को सुखी करने के लिए आप अनेक प्रकार के कष्ट सहन करता है रात दिन परिश्रम करके धन कमाता है। पराई नौकरी करता है, अफसरों की चापलूसी करता है झिड़कियां खाता है या दुकानदारी में अत्यन्त परिश्रम करता है, यह सब कुछ सन्तान के लिए करता है। उसको केवल दो रोटी चाहियें किन्तु वह सन्तान के लिए मकान बनवाता है, बैंकों में हजारों रुपये जमा करता है, हजारों रुपये खर्च कर के सन्तान को सुशिक्षित करता है; इससे अनुमान किया जा सकता है कि माता पिता का सन्तान के प्रति कितना प्रेम

है। जितना कष्ट वह हमारे लिए सहते हैं यदि हम उनकी हज़ारों जन्म तक सेवा करें तो भी बदला न उतरे[1]। माता पिता अपनी सन्तान से कितना प्रेम करते हैं इस बात का पूरा अनुमान आप लोग नहीं लगा सकते इस प्रेम का उन्हीं को पता लगता है जिन के सन्तान है: फिर भी छोटी २ दो एक कथाओं से इस विषय को स्पष्ट किया जाता है।

एक बुढ़िया का एक बेटा था। वह किसी कार्यवश दस दिन के लिए बाहिर जाने लगा। चलता हुआ कहने लगा—माता जी आप के लिए क्या लाऊं? बुढ़िया ने कहा बेटा मुझे एक चीज़ का शौक है वही मेरे लिए लेते आना, वह यह है कि जब तुम रोटी खाने लगो तो उनके ऊपर से झड़कर गिरी हुई पपड़ी इकट्ठी करके लेते आना। लड़के को बड़ा आश्चर्य हुआ कि माता जी ने यह क्या चीज़ मांगी। खैर जब रोटी पकाता तो उनको खूब करारी सेकता जिस से कि अधिक पपड़ी झड़ें। सारांश यह कि जब घर को लौटा तो काफी बड़ी पुटलिया रूमाल में बांध कर माता जी के वास्ते लाया और घर आकर भेंट कर दी। मां ने लेकर सब को कूड़े में फेंक दिया। बेटा पूछने लगा माता जी! आप बड़ी विचित्र हैं, मेरे से इतना परिश्रम करवाया और फिर पपड़ियां को वैसे ही फेंक दिया।

---

१ यंक्लेशं मातापितरौ सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं जन्मशतैरपि॥ मनु।

बुढ़िया ने हंस कर कहा—बेटा इन पपड़ियों से जो काम लेना था वह मैं कभी का ले चुकी अब इनकी आवश्यकता नहीं रही। मैं जानती थी कि तुम ने कभी रोटी बनाई नहीं है कहीं कच्ची रोटी खाली तो बीमार हो जाओ इसलिए मैंने ऐसी चीज़ मांगी कि तुम को खूब रोटी सेकनी पड़े और स्वास्थ्य में बाधा न पड़े। इस कथा ने माता के हृदय को नंगा कर के आप के सामने रख दिया है आप देख सकते हैं कि माता को संसार में अपनी सन्तान के सुख के समान कोई भी पदार्थ प्रिय नहीं है। आत्मत्याग का इससे बढ़ कर कोई उदाहरण मिल ही नहीं सकता। एक और कथा सुनिये—

एक जवान लड़का पतंग उड़ाने का शौकीन था। वह दोपहर के समय मलेरिया के दिनों में धूप में खड़ा हो कर पतंग उड़ाने लगा। उसके बाप ने मना किया कि बेटा धूप लगेगी तो बुखार हो जावेगा अब पतंग मत उड़ाओ। लड़के ने कुछ परवाह न की। बूढ़े बाप को बहुत दुःख हुआ, वह बेटे के कष्ट को सहन नहीं कर सका। अन्त में उस को एक युक्ति सूझी। अपने पोते को गोद में लेकर वह भी धूप में खड़ा हो गया और पतंग का तमाशा दिखलाने लगा, जब लड़के ने छोटे से बच्चे को धूप में देखा तो उसको उतना ही दुःख होने लगा जितना कि उस के बूढ़े बाप को था। कहने लगा पिता जी! इस छोटे बालक को धूप लगती है इसे जल्दी भीतर ले जाओ। बाप ने कहा मेरे बच्चे को भी तो बहुत देर से धूप लग रही है इसका मुझे इतना ही दुःख

है जितना तुम को अब होने लगा है। इस बात ने नौजवान लड़के को प्रभावित कर दिया और वह पतंग छोड़ कर भीतर चला गया। बात यह है कि जितना ध्यान माता पिता को अपनी संतान का होता है उतना वह स्वयं अपना भी नहीं रख सकते। इस निस्वार्थ सेवा का बदला तो नहीं दे सकते किन्तु फिर भी जितना आप से हो सके उनकी सेवा करनी चाहिए। उनकी आज्ञा के बिना कोई काम न करो। प्रातः सायं उन को नमस्ते कहो। उनको अच्छे आसन पर बैठाओ आप नीचा आसन लो। जो कोई चीज़ बाजार से लाओ उनके सामने रख दो अपने आप पहिले खाना आरम्भ मत करो। उनकी बात का बड़ी नम्रता से उत्तर दो। जब आप कमाने लग जावें और आप की स्त्री घर में आजावे तब भी मां बाप का प्राधान्य घर में रखो। जब भोजन बनने लगे पहिले उनसे पूछना चाहिए कि आज क्या चीज़ खाने की इच्छा है। जो कमा कर लावें वह सीधा स्त्री के हाथ में न दें बल्कि पहिले माता जी को दें फिर वह आप की स्त्री को दे देंगी इस से उसका मान बढ़ेगा और अपने अन्तःकरण में सुख और संतोष का अनुभव करेंगी। आपको रात दिन आशीर्वाद देंगी, आप का गृहस्थ एक प्रकार का स्वर्ग हो जावेगा।

माता पिता के अतिरिक्त पितर और भी हैं। अपने सम्बन्धिओं में जो २ बड़े पुरुष या स्त्री हैं वह भी पितृ नाम से पुकारे जाते हैं उनकी भी यथायोग्य सेवा करना, सत्कार करना आपका धर्म है। ऐसा करने से आप गली मुहल्ले में सब के मन में चढ़

जावेंगे और आप की कीर्ति फैलेगी। सब कहेंगे कि यह बड़ा सुपुत्र है ऐसी संतान जिसके घर हो वह धन्य है। इसी प्रकार अपने गुरु भी पितर कहाते हैं वह भी आप को बड़े परिश्रम से विद्या दान देते हैं। वास्तव में गुरु ही मनुष्य को योग्य बनाता है अतः उसका मान करना और सेवा करना बड़ा भारी धर्म और सुख का कारण है।

प्राचीन समय में जब कि वेदों का खूब प्रचार था लोग बड़े पितृभक्त थे। महाराज रामचन्द्र जी ने पिता और सौतेली माँ के कहने पर राजपाट छोड़कर चौदह वर्ष तक जंगल में अनेक कष्टों का सामना किया। श्रवण कुमार अपने बूढ़े माता पिता को बँहगी में बिठाए फिरा करता था और उनके सन्तोष में ही अपने जीवन को सफल समझता था। भीष्म पितामह ने पिता के लिए सारी आयु ब्रह्मचारी रहने और राज्य सुख को छोड़ने का प्रण करके पराए अन्न पर निर्वाह किया। महाराज दिलीप चक्रवर्ती राजा होने पर भी पत्नी सहित महाराज वशिष्ठ के आश्रम में गए और साधारण ब्रह्मचारियों की तरह उनकी गौ की सेवा की। गुरुओं का मान करने के कारण वह राजे संसार में अब भी प्रसिद्ध हैं क्योंकि जब वह वेद पाठी विद्वान् ब्राह्मणों का सत्कार करते थे तो वह उनको ऐसा उपदेश देते थे कि उनके राज्य में कोई भी विघ्न बाधा न हो, प्रजा में धर्म ही धर्म का व्यवहार था। उस समय का संसार सुख का घर बना हुआ था। इसका मुख्य कारण यही

था कि माता पिता, विद्वान संन्यासियों और तपस्वियों का खूब मान था वह लोग रात दिन प्रजा का हित चिंतन करते थे। जब यह परिपाटी नष्ट होगई तो भारतवर्ष में दुःख बढ़ गए क्योंकि जहाँ पर बड़ों का मान न हो वहां पर दुःख ही हुआ करता है[१]। आप बड़े समझदार हैं, वैदिक धर्म का तत्त्व आप ने समझ लिया होगा अतः आशा की जाती है कि अपने जीवन को वैदिक धर्म के नियमों में ढाल कर पितृभक्त और गुरुभक्त बनेंगे जिससे अपना और पराया सुख बढ़ा सकें।

इस सम्बन्ध में एक बात की ओर से बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। बहुत से पाखण्डी लोग पितृसेवा के नाम से भोले लोगों को कुछ का कुछ बहकाया करते हैं। वह खूब समझते हैं कि जीवित माँ बाप की सेवा करने से उन धूर्तों की मुट्ठी गरम नहीं होती इसलिए पितर का अर्थ उन्होंने मरे हुए माँ बाप बतलाया हुआ है और कहते हैं कि माँ बाप का नाम लेकर हमको भोजन, वस्त्र, दान, दक्षिणा दोगे तो आपके माता पिता या दादा को जोकि मर चुके हैं पहुँच जायगा। इस प्रकार चकमा देकर यह लोग हिन्दुओं को अनेक प्रकार से ठगते हैं। उनको भी यह सौदा कुछ सस्ता पड़ता है। क्योंकि जीवित माँ बाप की तो रात

१ अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥ मनु।

दिन सेवा करें तब कहीं धर्म का पालन होगा किन्तु मरे हुए के लिये वर्ष में एक दिन ही टंटा करना होता है इसलिए लोग अधिकतर इस ओर झुक गये। जीते हुए माँ बाप की खूब दुर्गति करने और मरने के पीछे उनके नाम पर खूब धन लुटाने लगे। और लोगों ने यह अनर्थ देखकर खूब मखौल उड़ाया और कहने लगे कि 'जीते बाप से दंगम दंगा मरे बाप पहुँचाए गंगा।' इस मूर्खता को जानकर आप अवश्य सचेत होगये होंगे क्योंकि आपने वैदिक धर्म का सिद्धान्त जान ही लिया है कि जीव मरने के पीछे अपने पाप पुण्य के अनुसार दूसरे शरीर में चला जाता है फिर उसका पहिले परिवार से कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता है, उस अवस्था में उनके लिए भोजन वस्त्रादि की फ़िकर करना व्यर्थ है और इन पेटार्थी लोगों की चलाई हुई पोपलीला है। यह लोग आप माल उड़ाते हैं और आपके माता पिता को आपकी सेवा से वंचित रखना चाहते हैं इसलिए इनके जाल में न आप फँसना और न किसी और को फँसने देना। पितृ ऋण से मुक्त होने का वही वेदोक्त उपाय है जो हमने ऊपर बताया था उसी को ग्रहण करके सुख प्राप्त होगा।

बलिवैश्वदेव यज्ञ

चौथा यज्ञ बलि कर्म है। उसका बड़ा सुन्दर अभिप्राय है कि आप जो कमाते हैं उसमें केवल आपका ही भाग नहीं है

किन्तु औरों का भी अधिकार है। उनको उनका भाग दिये बिना कभी भोजन नहीं करना चाहिए। जो लोग केवल अपने ही लिए कमाते और खाते हैं वह बड़े स्वार्थी और पापी हैं[१]। संसार में सैंकड़ों अपाहज रोगी, अनाथ और निर्धन हैं। वह भी मनुष्य के नाते से हमारे भाई ही हैं। परमात्मा के वे ऐसे ही पुत्र हैं जैसे हम। हम और वह इस संसार रूपी परिवार के सभासद् हैं इस अवस्था में यदि हम दिन में कई बार डट कर भोजन करें, फैशन पर रुपया लुटाते रहें, तमाशों में खूब जेब खाली कर दें और वे हमारे भाई भूखे प्यासे, बेघर सर्दी में ठिठरते रहें तो हमारा जीना और कमाना धिक्कार है। परमात्मा हमारे राग रंग के बीच में इनकी दुर्दशा को देखकर क्या कहेगा इसलिये सार्वजनिक सेवा के कार्यों में धन लगाना बलिवैश्वदेव यज्ञ कहलाता है। कुएँ, तालाब, धर्मशाला, सड़क आदि बनवाना इसी के अन्तर्गत है। इन कार्यों से अनेक जीवों को अत्यन्त सुख प्राप्त होता है। इसी प्रकार अनाथ बच्चों के पालन पोषण का प्रबन्ध करना, रोगी मनुष्य और पशुओं के लिए चिकित्सालय बनवाना, मोहताज अपाहज और बूढ़े मनुष्यों की रक्षा करना। भूकम्प, अतिवृष्टि

---

१ केवलाघो भवति केवलादी। यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

भग्वद्गीता।

दुर्भिक्षादि संकटों में प्रजा की सहायता करना, वैदिकधर्मानुयायी के लिए इतना ही आवश्यक है जितना कि अपना पेट भरना।

वैदिक धर्म केवल मनुष्यों की सहायता ही नहीं सिखाता अपितु पशु पक्षियों को भी मित्र की दृष्टि से देखने का उपदेश करता है[1]। इस लिए पशुओं पर दया रखना भी वैदिक धर्म का एक अंग है। पशु पक्षी जंगल को छोड़ कर मनुष्य का आश्रय ले रहे हैं; उनका अधिकार भी हमारे नित्य प्रति के भोजन में है। अतः कुत्ता, बिल्ली, कौवा आदि को भी अपने भोजन में से कुछ भाग निकाल कर देना होता है। इन सब बातों को बलिवैश्वदेव यज्ञ के नाम से पुकारा जाता है। यदि हम इस यज्ञ को करते रहें तो यह मनुष्य समाज बहुत ही सुखी हो जावे। कोई भी जीव दुखी दिखाई न दे। संसार में स्वार्थ का नाश हो कर परमार्थ ही दिखाई दे।

यहां पर भी एक सावधानी की आवश्यकता है। अनधिकारी को दिया हुआ दान देने और लेने वाले दोनों का सत्यानाश कर देता है। हम लोगों की बे समझी से भारतवर्ष भिखारियों से भर गया है। इस में लाखों आदमी हट्टे कट्टे मुसटंडे हैं जो कुछ भी काम नहीं करते और केवल भीख मांग कर ही खाते हैं। मुफ्त का खा कर उनको अनेक प्रकार के पाप सूझते हैं

१ मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षंताम। यजुर्वेद।

और वह लोग घृणित से घृणित पाप करते रहते हैं। ऐसे मनुष्यों को दान देना बड़ा भारी पाप है। भारतवर्ष इसी प्रकार के दानके कारण दिन प्रति दिन गिरता जा रहा है। कुपात्र को दान देने में आप अपना हृदय पत्थर का बना लो और उनकी बनावटी बातों पर कुछ भी विश्वास न करो। यह लोग सब दान उड़ा ले जाते हैं और वास्तविक अधिकारी भूखे मरते हैं वह पाप भी हमारे ही सिर पर है। इसलिए बहुत सोच समझ कर सुपात्रों को दान देने से ही आप बलिवैश्वदेव यज्ञ का फल लाभ कर सकेंगे। आप से पूर्ण आशा है कि आप दीन दुखियों को सहायता देने में कभी भी पीछा न दिखावेंगे और पाखण्डी लोग आप के द्वार से एक कौड़ी भी प्राप्त न कर सकेंगे।

अतिथियज्ञ

वैदिक धर्म का एक और सौन्दर्य है जो कि किसी और समाज में ढूँढने से भी नहीं मिलेगा। वह यह कि इस धर्म के अनुसार जितने भी अनुभव शील, धार्मिक, विद्वान और सदाचारी पुरुष हैं वह किसी घर के न रह कर सारे समाज के पुरुष हो जाते हैं। उनका कार्य ही सब मनुष्यों की भलाई के लिए जहाँ तहाँ घूमते रहना है। वह अचानक किसी गृहस्थी के यहां आ निकलते हैं। उस अवस्था में उनकी जितनी भी सेवा हम लोग कर सकें थोड़ी है। ऐसे अवसरों की हमें बड़े चाव के साथ प्रतीक्षा करनी चाहिए। उनकी सेवा करने से हम मनुष्य मात्र के ज्ञान और धर्म की वृद्धि करते हैं क्योंकि वह लोग ज्ञान और

धर्म के कोष हैं जितने वह सुखी और संतुष्ट रहेंगे, संसार का अधिक उपकार करेंगे। उनकी सेवा के अतिरिक्त उनके उपदेशों को भी बड़े ध्यान से सुन कर आचरण में लाना चाहिए इस प्रकार के महात्माओं की सेवा को अतिथि यज्ञ कहते हैं। ऐसा करने से धर्म और विद्या की वृद्धि होकर संसार में आनन्द बढ़ता है।

इस यज्ञ के अन्तर्गत अन्य विद्वानों की सेवा करना भी है। जिन लोगों ने स्वाध्याय और मनन करके विद्या के किसी क्षेत्र में विशेष उन्नति की है या नए २ आविष्कार किए हैं वह हमारे मान और श्रद्धा के पात्र हैं। ऐसे महानुभावों को बुला कर उन के व्याख्यान कराने चाहिएँ। उनके सत्संग से लाभ उठाना चाहिए और उनकी रची हुई पुस्तकें खरीदनी और पढ़नी चाहिएँ। उन को देख कर आप के मन में भी उन जैसा बनने की भावना उत्पन्न होगी इसी को ऋषितर्पण भी कहते हैं। प्राचीन समय में बड़ी २ ज्ञान गोष्ठी हुआ करती थीं, उस समय बड़े २ विद्वान इकट्ठे होकर ज्ञान के अनेक तत्वों पर विचार करते थे। इसी तरह से बड़े २ शास्त्रों का निर्माण हुआ है। इस समय में भी विद्या सम्बन्धी अनेक सभाएँ अपने अधिवेशनों में दूर २ से विद्वानों को एकत्रित करती हैं और धनादि से उनकी खूब सेवा करती हैं। विद्या के प्रचार का और ज्ञान वृद्धि का यह बहुत सुन्दर उपाय है। अभी अमेरिका ने भारतवर्ष से वैदिकधर्म के धुरंधर विद्वान श्री पंडित अयोध्याप्रसादजी को बुलाया हुआ

है। एक वर्ष से वह वहां खूब धर्म प्रचार कर रहे हैं और सैंकड़ों अमेरीकनों को वेदों और ऋषि दयानन्द का भक्त बना चुके हैं। इसी प्रकार कविसम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को प्रायः सभी देशों ने बुलाकर उन की पूजा की है। सर जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पति शास्त्र में इतनी उन्नति की है कि सारा संसार इस विद्या में उनको गुरु मानने लग गया है। उनको भी सभ्य देशों में अपूर्व सम्मान प्राप्त हुआ है। ऐसे लोगों की प्रतिष्ठा करना, सेवा करना और सत्संग से लाभ उठाना ही अतिथि यज्ञ और ऋषितर्पण है। इसके करने से हमारा ही लाभ और न करने से हमारी ही हानि है। आप इस बात का पूरा ध्यान रखा करें कि आप जो भी धर्म कार्य करते हैं वह अपनी उन्नति के लिए करते हैं, किसी पर उसका अहसान नहीं है। जिसकी आप सेवा करते हैं या जिसका उपकार करते हैं उस को साधन मात्र बनाते हैं।

प्यारे ब्रह्मचारियो! आपने देख लिया कि वैदिक धर्म के अनुसार मनुष्यजीवन ही एक प्रकार का यज्ञ है। यज्ञोपवीत धारण करके आपने उस यज्ञमय जीवन को व्यतीत करने की प्रतिज्ञा कर ली है। इन यज्ञों के करने से ही आप के पितृ देव और ऋषि ऋण उतरते हैं। ऋण शब्द ही इस बात की ओर संकेत करता है कि इन का करना अनिवार्य है। जिस प्रकार करजा न चुकाने वाला राज्य सभा द्वारा दण्डनीय होता है वैसे ही इन यज्ञों को न करने वाला परमात्मा द्वारा दण्ड को प्राप्त होता है। माता, पिता, गुरु,

विद्वानों की सेवा करने और योग्य संतान पैदा करने से पितृऋण चुकता है। नित्य प्रति हवन करने से देवऋण और विद्या की वृद्धि करने, अतिथि सेवा करने और स्वयं स्वाध्याय करने से ऋषिऋण से मुक्ति होती है। अतः आपका कर्त्तव्य है कि इन ऋणों को भली भाँति चुका कर अपने यज्ञोपवीत को सफल करो। अब इस यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में आश्रमधर्म की मर्यादा बतलाई जाती है।

ब्रह्मचर्य्य

वैदिकधर्म के अनुसार मनुष्य की आयु का माध्यम १०० वर्ष होना चाहिए अर्थात् कोई मनुष्य १०० से कम आयु में मर गया और कोई अधिक जी गया सब को बराबर आयु बांटने में सब के हिस्से में १०० वर्ष आने चाहियें। इस आयु के चार भाग किये गए हैं। प्रत्येक भाग में मनुष्य के कर्त्तव्य भिन्न २ हैं। सब से पहिले भाग को *ब्रह्मचर्य* आश्रम कहते हैं। वह मनुष्य को कम से कम २५ वर्ष तक रखना चाहिए। अर्थात् २५ वर्ष की आयु तक आप को चाहिए कि गुरु के आधीन हो कर तपस्या का जीवन व्यतीत करें। विवाह न करें और अपने मन, वाणी और आत्मा को शुद्ध रखें।

यह आश्रम आप के लिए प्रत्येक प्रकार की उन्नति का है। इस में विद्या खूब पढ़नी चाहिए और आगे आने वाले जीवन संग्राम के वास्ते पूरी तय्यारी कर लेनी चाहिए। याद रखो यह आश्रम, मनुष्य जीवन रूपी भवन की नींव है। आपका भावी जीवन इसी की सफलता और निष्फलता पर निर्भर है। इस में आप को अवसर है कि अपने अन्दर अच्छे २ गुणों का कोष[1] एकत्र

1 Well begun is helf done

करलें और वीर्य रक्षा द्वारा अपने शरीर और आत्मा को बलवान् बनाले। यदि आप अपने इस आश्रम को ठीक निबाहने में सफल हो गए तो मान लो आपने बड़ी भारी लड़ाई जीत ली। ब्रह्मचर्य द्वारा संसार में हमारे पूर्वजों ने बड़े २ कार्य कर डाले हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती को यदि संसार के सामने अकेले खड़ा होने और उसकी विचार धारा को मोड़ने का साहस हुआ तो केवल अपने ब्रह्मचर्य के बल पर। भीष्म पितामह यदि मृत्यु शय्या पर पड़े हुए भी धर्मोपदेश दे सके तो केवल ब्रह्मचर्य के प्रताप से, और राम और लक्ष्मण के घर होते हुए भी रावण जैसे बलवान् राक्षस पर विजय प्राप्त कर सके तो वह भी ब्रह्मचर्य की ही महिमा थी। आपके मन में इन महानुभावों के चरित्र पढ़ कर यह भावना अवश्य उठनी चाहिए कि आप भी इन में से किसी एक के समान बन कर संसार में कुछ कर के दिखावें। यह भावना बड़ी पवित्र है और आपकी नसों में नवीन रक्त का संचार है अतः वैसा बन जाना कोई असम्भव बात नहीं है। किन्तु बिना ठीक साधन के कोई छोटा सा भी कार्य सिद्ध नहीं होता बड़े का तो कहना ही क्या है। सो यदि आप के मन में सचमुच एक उच्च व्यक्ति बनने की उमंग है तो हम भी आपकी सहायता

---

१ सत्यं रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम्।
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन्सर्वपापान्युपासितम्॥ महाभारत।

२ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत। अथर्ववेद।

करने में तत्पर रहेंगे। जो बातें हमने शास्त्रों के पढ़ते और अपने अनुभव से ब्रह्मचर्य के अनुकूल और प्रतिकूल देखी हैं उनकी ओर आपका ध्यान आकर्षित कर देते हैं। उन को कार्य में लाना आपका काम है। और जब आप उन बातों को अच्छी तरह से समझ लेंगे तो अवश्य साधन में लावेंगे यह एक अनिवार्य नियम है। संसार में प्रत्येक पाप और दुःख अज्ञान से आता है[1] अतः ज्ञान ही सब सुखों का मूल है। जब दो बालक एक ही खिलौने पर झगड़ रहे होते हैं तो दोनों उस पर अपना अधिकार मानते हैं जब उन में से एक को अपनी भूल का पता लग जाता है तो तुरन्त खिलौने को बिना संकोच हाथ से छोड़ देता है। इसी प्रकार एक चोर तभी तक चोरी करता है जब तक कि उसे यह एक नफे का सौदा लगता है। किन्तु यदि उसे यह पता हो जावे कि इस चोरी के क्षणिक लाभ से उस का आत्मा मलीन हो रहा है तो वह तत्काल चोरी का त्याग कर देता है जैसा कि महर्षि बाल्मीकि ने किया था। ऐसे ही भोग के जीवन की हानि और तपोमय जीवन के लाभ समझने से मनुष्य तपस्वी बनने में संकोच नहीं करता। तप ही ब्रह्मचारी का भूषण है। विद्या और आराम एक साथ नहीं रहते[2] बल्कि भोग में फंसे हुए मनुष्य को

१ अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम प्रसुप्ततनु विच्छिन्नोदाराणाम ।

योगदर्शन ।

२ सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम् ।
सुखार्थी चेत्यजेद्विद्या, विद्यार्थी चेत्त्यजेत्सुखम् ॥ नीति शास्त्र ।

कोई भी अच्छी वस्तु प्राप्त नहीं होती।[1]

ब्रह्मचारी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। एक 'ब्रह्म' जिस का अर्थ परमात्मा, वेद और अन्न है। दूसरा 'चर' है जिसका अर्थ आचरण करना और खाना है। अतः ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ हुआ वेदानुकूल आचरण करना या परमात्मा के नियमानुकूल जीवन व्यतीत करना और अन्न को उन्हीं नियमों के आधीन होकर खाना। इसलिए आप में से जिन का भोजन और आचरण वेद और परमात्मा के नियमानुकूल है वह सच्चे ब्रह्मचारी हैं। भोजन और आचरण के कुछ नियम बताये जाते हैं जिनके पालने से आप अपने वीर्य की रक्षा कर सकेंगे।

मनुष्य जो कुछ खाता है उस का शरीर के अन्दर संस्कार होते २ एक प्रकार का रस बनता है जो कि सारे शरीर में बल, पराक्रम और तेज देता है। मन में उत्साह और उमंग पैदा करता है, आत्मा को बल देता है। उस के कारण चेहरे पर वह सौन्दर्य्य आता है कि हजारों रुपये के शौकीनी के सामान से भी नहीं आ सकता। उसका नाम वीर्य है। उसकी रक्षा करना मानों अपनी रक्षा करना है। डाक्टरों का कथन है कि एक तोला वीर्य आधे सेर रक्त के बराबर होता है। जिस के शरीर

---

१ नाश्रान्ताय भद्रमस्ति ॥ वेद वाक्य।

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ मनु।

से एक तोला वीर्य नष्ट हो गया तो मान लो कि उसने आधा सेर खून नष्ट कर दिया। जिसका वीर्य सुरक्षित होता है उसकी स्मरण शक्ति बलवान होनेसे वह बहुत जल्दी विद्वान होजाता है और आपत्ति के पहाड़ टूट पड़ने पर भी आनन्द में रहता है। एक तरह से वीर्य शरीर का राजा है। जिस आदमी के गाल पिचक गये हों, आंखें धँस गई हों, मन में किसी प्रकार का उत्साह न हो तो जान लो कि उसका वीर्य नष्ट हो गया है। वीर्य दो प्रकार से नष्ट होता है एक इच्छा से, दूसरे अनिच्छा से भी; सो दोनों ही प्रकार के नाश को रोकना चाहिए जिस से ऊर्ध्व रेता कहला सकें। ऊर्ध्वरेता बनने के लिए निम्न उपायों की आवश्यकता है।

आठ प्रकार के मैथुन का त्याग

ब्रह्मचर्याश्रम में स्त्री और पुरुष आपस में किसी प्रकार का मेल जोल न रखें। उनका याद आना, उनके विषय में बात-चीत करना, उन से हँसी-मखौल करना, उन की ओर ध्यान पूर्वक देखना, उन से एकान्त में बात-चीत करना, उन से मेल-जोल का विचार करना या समागम करना ब्रह्मचर्य को नष्ट करता है। इस लिए इन बातों से बहुत बचने की आवश्यकता है। यह बात

---

१ स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

स्पष्ट ही है कि जिन विचारों से अपने मन में किसी प्रकार की विषय वासना की उत्पत्ति होती हो उन विचारों को मन में आने ही नहीं देना चाहिये। आदमी के विचार ही उसको बुरे या भले आचरण की ओर ले जाते हैं[1] इसलिये विचार-शुद्धि वीर्य रक्षा का बड़ा साधन है। आप इस बात को सोचें कि जो लड़के स्त्री-पुरुषों के गन्दे प्रेम के किस्से कहानी सुनते या पढ़ते हैं या सिनेमाओं में जाकर बुरे बुरे दृश्य देखते हैं वे अपने विचारों को कैसे शुद्ध रख सकेंगे। ऐसे तमाशों में ही इनके मन में एक प्रकार का ज़हर मिल जाता है; जो कि उनके वीर्य को नष्ट कर देता है। बहुत से घरों में नंगी स्त्रियों की तस्वीरें लगी रहती हैं यह बच्चों के लिये बहुत हानिकारक हैं। ऐसी तस्वीरों को कभी मत देखो और उनको उतार कर फाड़ डालो ऐसे ही कुत्ते, बिल्ली, घोड़े आदि पशुओं को आपस में मैथुन करते कभी मत देखो, ऐसा करने से भी मन में क्षोभ उत्पन्न होता है और फिर स्वप्न में वीर्य नष्ट होने की सम्भावना हो जाती है। सारांश यह है कि ब्रह्मचर्य काल में अपने मन को विषय वासना के विचारों से बिलकुल दूर रखो। विचारों में गन्दगी आने देना मानों अपने वीर्य को जान बूझकर नष्ट करना है। विचारों को पवित्र रखने का एक उपाय यह भी है कि अपना

---

१ यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति, यत्कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।

लक्ष्य बहुत ऊंचा रखो और इस की ओर से चित्त को डांवाडोल मत होने दो। बड़े २ मनुष्यों के जीवन चरित्र अवश्य पढ़ो और उनके जीवन की अच्छी बातें ग्रहण करो । आंख मीच कर उनकी सभी बातें लेलेना भी अच्छा नहीं होता क्योंकि बहुधा देखा गया है कि महापुरुषों में भी अच्छे गुणों के साथ किसी २ दोष का मिश्रण होता है।

उपस्थेन्द्रिय का संयम

मूत्रेन्द्रिय को सिवाय मलमूत्र त्यागने के समय के कभी मत छुओ । उस को स्नान के समय ठण्डे पानी में खूब धोना भी चाहिए और रात दिन लंगोट बांधे रहना चाहिए । लंगोट पतले कपड़े का हो तो अच्छा है । बिना लंगोट के एक क्षण भी न रहना चाहिए क्योंकि अण्डकोष और मूत्रेन्द्रिय खुले रहने से नसें कमज़ोर पड़ जाती हैं और अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। लंगोट से शरीर चुस्त और फुरतीला रहता है। इस प्रकार के आसन पर या सवारी पर न बैठो जिस से कि इन्द्रिय पर दवाब पड़े। सारांश यह है कि इस को सब प्रकार की उत्तेजनाओं से सुरक्षित रखो।

सात्विक भोजन

भोजन का ब्रह्मचर्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लाल मिर्च, खटाई, अधिक मसाले, प्याज़, लहसन, मांस, अण्डे, चाय सिगरट शराब आदि का सेवन ब्रह्मचारी को कभी भी नहीं करना चाहिए।

इन के सेवन से शरीर में वीर्य नहीं रह सकता क्योंकि यह पदार्थ उत्तेजना पैदा करते हैं और किसी न किसी प्रकार उसको क्षीण कर देते हैं। इनको छोड़ कर घी, दूध, मीठा, फल, और अन्न को ही खाना चाहिए। रात को सोते समय गर्म दूध मत पिओ बल्कि सोने से कम से कम दो घण्टे पहिले भोजन करलो और दूध भी पहिले ही पीलो। सोते समय दूध पीने से स्वप्न दोष हो जाया करता है। अधिक भोजन करना भी हानिकारक है। भूख दो प्रकार की होती है एक आंख की, और दूसरी आंत की। जब कोई चीज़ सामने आ जाती है या किसी को खाते देख कर आप के मन में भी खाने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है वह असली भूख नहीं है बल्कि दिखावे की है। इस प्रकार की प्रेरणा से खाया हुआ भोजन शरीर में जाकर बहुत हानि करता है और बहुत से रोगों का कारण बनता है। आँत की भूख वह है जो कि अन्दर से लगती है। उस समय किया हुआ भोजन बहुत स्वादिष्ट लगता है और शरीरमें औषधि की तरह से बलवीर्य की वृद्धि करता है। आँख की भूख पर भोजन करने वालों को किसी चीज़ में स्वाद ही नहीं आ सकता, वह चटोरे हो जाते हैं और भोजन के असली उद्देश्य को भूलकर जिह्वा के स्वाद को मुख्य समझते हैं। ऐसे लड़के कभी भी अपने वीर्य की रक्षा नहीं कर सकेंगे; अतः सुख की इच्छा रखने वाले अपने भोजन को बहुत नियमित कर दें।

गाढ़ निद्रा

ब्रह्मचारी को अपनी नींद पर अधिकार होना चाहिये अर्थात उसकी नींद उसके वश में रहे। अच्छी नींद वह है जिसमें मनुष्य को सुख दुःख का कुछ भी ज्ञान न रहे। वह नींद छः या सात घण्टे से अधिक नहीं आसकती। इससे अधिक समय तक बिस्तरे पर पड़े रहने वालों को अच्छी नींद का स्वाद कभी नहीं आ सकता। वह इधर उधर करवटें बदलते रहते हैं और कभी जाग जाते हैं, कभी सुपने देखते हैं, कभी आलस्य की मस्ती में पड़ रहते हैं। इस अवस्था में वीर्य नष्ट हो जाया करता है। इसलिये अच्छी नींद लेने के लिए दिन में कभी भी न सोना चाहिये। रात को भी जागते हुए बिस्तरे पर मत पड़े रहो, यदि नींद खुल गई है तो उठ कर अपना नित्य कर्म करने लग जाओ। सोते समय परमात्मा का ध्यान करके मन की शुद्धि के लिये शिव संकल्प वाले मन्त्रों का अर्थ सहित जाप करके लेट जाओ और ऐसा समझो कि आप कुछ समय के लिये अपनी माता जी की गोद में लेट गये हैं। कोई कुचेष्टा उस समय न करो।

कर्म शीलता

वीर्य रक्षा के लिए यह भी आवश्यक है कि मन को सदा काम में लगाए रखो,[1] निकम्मे रहने से ही पाप सूझा करता है।

---

१ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंसमाः। यजुर्वेद।

On idle man's brain is the Devil's workshop.

नित्यप्रति व्यायाम करो जिससे कि वीर्य शरीर के रोम २ में बस जाय और शरीर सुन्दर और सुडौल हो जाय। प्राणायाम भी बहुत लाभदायक चीज़ है; उस के द्वारा मन और इन्द्रियाँ वश में रहती हैं।[1] और दोषों की ओर प्रवृत्ति नहीं होने पाती, प्राणायाम के समय वीर्य रक्षा के लाभ और हानि पर भी विचार करते रहना चाहिये और अपने उच्च लक्ष्य को सदा ध्यान में रखना और उस की प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। अच्छी २ पुस्तकों का स्वाध्याय करने, भले पुरुषों के सत्संग और परोपकार आदि के कार्यों में समय लगाना चाहिये। इस विधि से उत्तरोत्तर उन्नति ही होती रहेगी और आपका वीर्य आप के कामों में सफलता प्राप्त कराने में बहुत सहायता देगा।

प्यारे ब्रह्मचारियो! उपरोक्त कुछ बातें ब्रह्मचर्य के विषय में लिखी हैं। इनको ध्यान में रखने से और इन पर आचरण करने से आपको बहुत लाभ होगा और आगामी जीवन में आप के वास्ते प्रत्येक प्रकार की उन्नति का मार्ग खुल जावेगा।

ब्रह्मचर्य पालन के नियमों को या एक उच्च व्यक्ति बनने के साधनों को महर्षि पतंजलि मुनि ने योग दर्शन के थोड़े से शब्दों

१ दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनाम् हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ मनु।

२ प्राणायामैः दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥ मनु।

में बताया है, वह याद रखने सुगम होंगे अतः यहां पर लिखे जाते हैं। योग-दर्शन में यम और नियम पालने की आज्ञा दी गई है। पांच बातों को यम और पांच बातों को नियम कहते हैं[१] जिस प्रकार किसी बरतन में दूध-घी आदि उत्तम पदार्थ भरने के लिए यह आवश्यक होता है कि उस में से पहिले पड़े हुए बुरे पदार्थों को निकाल कर साफ करलें; उसी प्रकार आत्मा में अच्छे गुण धारण करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उसके दुर्गुणों को हटा लें। यम भी मनुष्य को पांच दुर्गुणों को छोड़ने का उपदेश करते हैं अर्थात् हिंसा, चोरी, झूठ, व्यभिचार और धन की अत्यन्त लोलुपता। इसके विपरीत नियम हमको पांच बातों को ग्रहण करने का उपदेश करते हैं अर्थात् शुद्धि, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर पर अत्यन्त विश्वास। यम और नियम की बातों का क्रमशः आपस में बड़ा सम्बन्ध है। सो एक २ करके लिखा जाता है।

अहिंसा और शौच

जो मनुष्य दूसरों की हिंसा करता है अर्थात् अपने स्वार्थ के वास्ते दूसरों का अधिकार छीनता है वह पहिले अपने मन को

---

१ अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। **योगदर्शन।**

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥ **योग।**

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।

यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥ **मनु।**

मैला करता फिर मन के मैल से उसकी बुद्धि पर परदा पड़ जाता है और वह विवेक भ्रष्ट होकर महामलीन हो जाता है। मांस, मछली, अण्डे आदि घृणित पदार्थों को खाने लग जाता है। भला विचार तो करो अण्डे में क्या चीज़ भरी है, वह मुर्गे और मुर्गी का एकत्रित किया हुआ पेशाब सा ही होता है। भेड़ का शरीर विष्ठा खाने से बनता है और मछली दुनिया भर के मैल को खा जाती है। इनके मांस को खाने से कोई कैसे पवित्र रह सकता है। फिर उसके मन में बुरी से बुरी बात के लिए स्थान हो जाता है। जब वह अपने कुछ समय के स्वाद के लिये एक जीते जागते पशु की जान लेने पर उतर आता है तो उससे और भलाई की क्या आशा कर सकते हैं। इसलिये अन्तःकरण और शरीर की शुद्धि तभी हो सकती है जब कि दूसरों की हिंसा का बिल्कुल त्याग कर दें। सिर्फ कपड़े धो लेना और चिकने चुपड़े बने रहने से कोई शुद्ध नहीं कहला सकता। यह माना कि नित्य-प्रति स्नान करना, दातुन करना, कपड़े साफ़ रखना और अपनी पुस्तकों और स्थान को स्वच्छ रखना भी धर्म है। इनके साफ रखने से स्वास्थ्य ठीक रहता है, मन प्रसन्न होकर काम सफलता से हो जाता है और मलीन रहने से मन भी मलीन हो जाता है। किन्तु यह भी ध्यान रहे कि बाहिर की स्वच्छता से अधिक आवश्यक अन्दर की स्वच्छता है। जल आदि से शरीर की शुद्धि होती है। सत्य बोलने और करने से मन शुद्ध होता है, विद्या और तप से आत्मा शुद्ध होता है और यथार्थ ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती

हैं सो अहिंसा व्रत को धारण करके प्रत्येक प्रकार की शुद्धि रखनी चाहिए।

शौच के अन्तर्गत यह भी आ जाता है कि मल मूत्र त्याग कर हाथ पांव मुँह को खूब जल से धोना चाहिए। भोजन के पश्चात् जल से मुँह को साफ कर लेना आवश्यक है। जहाँ तहाँ खाते फिरने से यह नियम नहीं पाले जा सकते। अतः समय पर और अच्छे स्थान पर ही भोजन करना ठीक है।

झूठ का त्याग और सन्तोष

जो मनुष्य यह चाहे कि उसको अपने पुरुषार्थ का फल ही मिले। इससे अधिक धन की लालसा न हो तो उसे सत्य ही बोलना होता है। झूठ वही बोलते हैं जिनके मन में धन की तृष्णा बहुत बढ़ी होती है। उनका पेट अपने पुरुषार्थ की कमाई से नहीं भरता, वह दूसरे का अधिकार छीनने के लिए मीठी २ बातें बना कर औरों पर विश्वास जमा लेते हैं, फिर झूठ बोल कर उनको ठगते रहते हैं। किन्तु ऐसा करने से उनको कभी सन्तोष नहीं होता और सुख सदा सन्तोष में ही होता है। यदि एक व्यक्ति की भूख दो रोटी खा कर मिट जाती है और दूसरा पचास खाकर भी भूखा रहता है तो कहना पड़ेगा पहिला व्यक्ति ही अधिक सुखी है क्योंकि उसकी भूख मिट गई

---

१ अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति । मनु ॥

और पचास खाने वाला अभी भूखा ही है। इसी तरह यह माना कि आपको बहुत से दुकानदार या ठेकेदार या रिश्वत लेने वाले अहलकार सुखी दिखाई देते होंगे क्योंकि उन लोगों ने झूठ बोल कर और दूसरों को धोखा देकर बड़े २ मकान, सवारी और ऐश के सामान इकट्ठे कर लिये हैं; किन्तु उनके जीवन को ध्यान से देखो तो वह बहुत दुखी हैं। उन्होंने अपनी धन की भूख को इतना बढ़ाया हुआ है कि मैं जूदा धन उसको शान्त नहीं कर सकता इसलिए वह रात दिन मारे २ फिरते हैं। भले कामों में एक कौड़ी दान करने को तय्यार नहीं होते. यदि देते हैं तो किसी भावी लाभ को लक्ष्य में रख कर देते हैं। पैसे के लिए नीच से नीच और घृणित से घृणित कार्य करने लग जाते हैं। अतः सन्तोष धारण करने के लिए अपने मन में से असत्य को निकालो, फिर सत्य से कमाई हुई रूखी सूखी रोटी में सोहन हलवे से अधिक आनन्द आवेगा।[1]

उपरोक्त कथन का सारांश यह है कि झूठे और लोभी आदमी

---

१ सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः ॥

उपनिषद् वाक्य।

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानाम् इतश्चेतश्च धावताम् ॥ नीति शास्त्र।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयएवाभिवर्धते ॥ मनु।

के पास बाहिर का आडम्बर तो बढ़ सकता है किन्तु वास्तविक सुख उसके पड़ोस में भी नहीं रह सकता। और सत्यवादी तथा संतोष वाला मनुष्य देखने में दीन सा लगता है किन्तु वह आत्मिक सम्पत्ति में मालामाल है और बहुत सुखी है[१] एक स्थान पर श्री स्वामी शंकराचार्य ने लिखा है कि संसार में कंगाल वही है जिस की तृष्णा अधिक बढ़ी हो[२]।

अस्तेय और तप

चोरी के त्याग को अस्तेय कहते हैं। और धर्म के मार्ग में आने वाली रुकावटों का सामना करके कष्टों को सहन करके भी धर्म पर आरूढ़ रहने को तप कहते हैं। चोरी कई प्रकार की होती है। केवल इसी को चोरी नहीं कहते कि रात को किसी के घर में घुसकर उस का धन उठा लावें। चोरी का लक्षण योग में यह किया है कि शास्त्रविधि को छोड़ कर दूसरे से धन लेना चोरी है। जो नौकर अपने मालिक का काम किये बिना वेतन ले लेता है वह भी चोर है। और जो दुकानदार अपने ग्राहक को बुरी तरह से मूँड़ता है वह भी चोर है। जो विद्यार्थी बिना परिश्रम किए अपने समय को व्यर्थ खोता है वह भी अपने पिता

१ यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत् सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥

योग दर्शन व्यास भाष्य।

२ दरिद्रोऽहि को ? यस्य तृष्णा विशाला ॥

के द्रव्य की चोरी करके खाता है। इस प्रकार के चोरों के अपराध से वही बच सकता है जो रात दिन पुरुषार्थ करके खाता है। निकम्मा रहकर खाना चोरी है। जो महन्त और नाममात्र के साधु बने फिरते हैं वह सब चोर हैं। ऐसे ही कई कम्पनियों के मैनेजर आदि ढोंग बना कर बहुत सा रुपया जनता की जेबों से निकालते रहते हैं वह भी चोर हैं। जब तक चोरी का धन खाने का स्वभाव रहेगा तब तक मनुष्य तप का जीवन व्यतीत नहीं कर सकता और बिना तप किए आत्मा में बल नहीं आ सकता। जिस प्रकार बिना व्यायाम के शरीर दुर्बल हो जाता है वैसे ही आत्मा भी तप के बिना बलवान नहीं होता[1]।

ब्रह्मचर्य और स्वाध्याय

ब्रह्मचर्य का मुख्याभिप्राय वीर्य रक्षा है[2]। और वीर्यरक्षा के बिना वेद का मर्म नहीं जाना जाता। इस वास्ते विद्यार्थियों को चाहिए कि बड़ी सावधानी से ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन कर के वेदशास्त्रों और नाना प्रकार की विद्याओं का ग्रहण करलें। ब्रह्मचारी जितनी विद्या ग्रहण कर सकता है उतनी व्यभिचारी को कभी नहीं आ सकती। आजकल बहुत से विद्यार्थी पढ़ते पढ़ते विवाहित होकर कई बच्चों के पिता बन जाते हैं उन की

1 A life without adversity is a picture without shade

२ ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ योग ॥

बहुत दुर्दशा होती है। बार बार परीक्षा में फेल होते हैं। क्लास में अध्यापकों की झिड़की पड़ती रहती है। उधर स्त्री तरह २ का सामान मांगती है। शरीर में किसी प्रकार का बल नहीं रहता, रोगों में ग्रस्त हो जाते हैं और प्रत्येक प्रकार की बीमारी का शिकार बन जाते हैं। इस लिए ब्रह्मचर्य पूर्वक ही विद्या प्राप्ति करना सुख का मूल है[1]।

(अपरिग्रह और ईश्वरप्रणिधान)

उचित आवश्यकताओं के उपरान्त धन को इकट्ठा न करना और स्त्रियादि में अधिक न फंसने को अपरिग्रह कहते हैं। जो लोग इन सांसारिक चीजों में अधिक फंसते हैं वह परमात्मा की महिमा को नहीं जान सकते[2]। वास्तव में आस्तिक भावोंका उनके मन में कोई स्थान ही नहीं होता। बाईबिल में इस बात को कुछ अत्युक्ति के साथ वर्णन किया है कि एक सुई के छेद में से ऊंट का निकलना सुगम है किन्तु किसी धनी आदमी के लिए स्वर्गके द्वार में जाना असम्भव है। इसलिए सांसारिक पदार्थों को केवल

---

१ स्वाध्यायाद्योगमासीत् योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥
॥ योगदर्शन व्यास भाष्य ॥
स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां मा प्रमदः ॥ उपनिषद् वाक्य ॥

२ हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ॥ यजुर्वेद।

साधन मात्र समझ कर इन से काम लेना चाहिए और अपना अन्तिम उद्देश्य परमात्मा को समझे। जो कार्य करे उस को ईश्वर के अर्पण कर देना चाहिए जिससे कि अभिमान न बढ़े। इन यम और नियमों को बड़ी श्रद्धा से पालन करते रहने से आप का आत्मा बलवान और सुखी रहेगा।



गृहस्थ आश्रम

प्यारे विद्यार्थियो ! आपने बहुधा गृहस्थी लोगों को आपस में बातें करते सुना होगा। उनमें से बहुत से ऐसा कहा करते हैं कि गृहस्थ एक प्रकार का नरक है। इसमें दुःख ही दुःख है, गृहस्थी आदमी कोई धर्म का काम भी नहीं कर सकता और न ही वह परमात्मा की भक्ति कर सकता है। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो उनका कथन एक अंश में ठीक हो है। आज कल जितने गृहस्थियों को देखो प्रायः दुखी ही दिखाई देंगे। किसी के घर सन्तान नहीं और किसी के घर बच्चों की इतनी भीड़ मची हुई है कि वह उनको भोजन वस्त्र भी नहीं दे सकता। उनके भोजनाच्छादन के निमित्त उसे अपमान सह कर भी धन कमाना पड़ता है। किसी का घर रोगों का डेरा बना हुआ है और बहुत सों के यहाँ स्त्री पुरुष में सदा अनबन रहकर देवासुर संग्राम रहा करता है। इस प्रकार के घरों को नरक कहा जाय तो इस में आश्चर्य ही क्या है ? शायद इसी प्रकार के घरों को देखकर स्वामी शंकराचार्य ने स्त्री को नरक का द्वार लिखा है। और शायद इसी प्रकार के घरों से डर कर आज कल बहुत से नव-युवक और युवतियां अविवाहित रहना चाहते हैं।

अब विचार इस बात पर करना है कि क्या गृहस्थ का वास्तविक रूप एक नरक का नमूना ही है? और क्या इस नरक में अविवाहित रहकर बचा जा सकता है? यदि गृहस्थ एक नरक का नमूना होता तो हमारे वेद और शास्त्र जोकि मनुष्यों को सदा कल्याण मार्ग का उपदेश देते हैं कभी गृहस्थी होने की आज्ञा न देते, किंतु वहां पर तो गृहस्थाश्रम की बड़ी महिमा गाई गई है और इस आश्रम को वैदिक धर्म रूपी भवन का स्तम्भ माना है। और यहां तक लिख दिया है कि इस आश्रम बिना किसी भी आश्रमवासी का निर्वाह नहीं हो सकता[1]। बात भी ठीक है; बिना गृहस्थी के संसार की पालना कौन कर सकता है? यदि गृहस्थ न किया जाय तो किसी के सिर पर कोई जिम्मेवारी न हो।

---

१ देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह॥ ऋग्वेद।
यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥
सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि॥
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥ मनु॥

और विना जिम्मेवारी के मनुष्य परिश्रम नहीं कर सके, और आलसी बन कर सब लोग तमोगुण के अन्धकार में निमग्न हो जावें। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासियों के भरण पोषण का बोझ सब गृहस्थियों के सिर पर ही है। छोटे बच्चों, बूढ़ों, रोगियों और अपाहजों की रक्षा भी गृहस्थी ही करता है। यदि गृहस्थ धर्म न हो तो यह सब कुछ नष्ट होकर संसार का उच्छेद हो जाय और महा अन्धेर फैल जाय।

कहते हैं कि किसी अविवाहित पुरुष ने एक बार किसी धर्मोपदेश में यह सुना कि प्रत्येक मनुष्य को अपने घर मे पहली और पिछली दो रोटी दान कर देनी चाहिएँ अर्थात् जो रोटी सब से पहिले तवे पर डाली जाय वह और जो पीछे डाली जाय वह, धर्म कार्य में लगानी चाहियें। प्रायः बहुत से घरों में होता भी ऐसे ही है, पहिली रोटी गौ या ब्राह्मण को मिलती है और पिछली किसी दीन दुखियं को। वह अभागा इस उपदेश को सुन कर चौंक पड़ा और उपदेशक से कहने लगा कि महाराज! आपकी सलाह यह है कि मैं भूखा मर जाऊँ क्योंकि मैं तो दो ही रोटी अपने लिये पकाया करता हूँ उनमें से एक पहिली और दूसरी अन्तिम हो गई। मेरे लिये बीच में कुछ भी नहीं बचा। कहने का तात्पर्य यह है कि जो आदमी गृहस्थी नहीं है उसकी जिम्मेवारी बहुत कम है इसलिये वह बहुत कम परिश्रम करता है और इसीलिए दूसरों के उपकार करने में समर्थ नहीं है। गृहस्थी को अपने बाल बच्चों का पेट भरने के लिये रात

दिन एक कर देने होते हैं। उसके पास धन धान्य पुष्कल हो जाता है; उससे वह औरों का भी उपकार कर सकता है। भूमि के पेट में घुस कर अनेक प्रकार की खानें खोदना, समुद्र की तह में जाकर रत्न निकालना, नदियों के सामने बन्ध बाँधना और नहरें निकालना, एक स्थान की पैदावार को अधिक उपयोगी बनाने के लिए हज़ारों मील समुद्र की छाती को चीर कर ले जाना, यह सब कुछ गृहस्थी ही करता है, किसी संन्यासी का यह काम नहीं है। उनके लिये तो यह कहावत प्रसिद्ध है कि "मोडा लेटे राख में दो खाई दो काल्ह में" इस तरह से विचार किया जाय तो गृहस्थाश्रम एक तप का आश्रम है इसकी संसार को अत्यन्त आवश्यकता है।

पितृ ऋण वास्तव में इसी आश्रम में उतरता है क्योंकि माता पिता की चाहे हम कितनी ही सेवा कर लें उनका बदला कभी उतर ही नहीं सकता। कुछ न कुछ कमी रह ही जायगी। माता का हृदय पुत्र में कैसे उत्पन्न हो सकता है, वह हृदय तो माता पिता वन कर ही पैदा होता है। सुनते हैं कि कोई पिता अपने पुत्र को गोद में लिये बैठा था सामने वृक्ष पर कौवा आ बैठा। पुत्र ने पूछा-पिता जी ! यह क्या है ? बाप ने उत्तर दिया कि यह कौवा है। उसने फिर पूछा कि यह क्या है ? पिता ने फिर उसी भाँति उत्तर दे दिया। इस तरह से उस बच्चे ने सौ बार प्रश्न किया और पिता ने सौ बार ही उसका उत्तर हँसी और प्रसन्नता से दिया। पिता ने यह बात अपनी डायरी में नोट कर

ली। बीस वर्ष पीछे लड़का जवान हो गया और बाप बूढ़ा हो गया। दैव योग से उसी वृक्ष पर एक कौवा आकर बैठ गया। बाप ने पूछा–बेटा यह क्या बैठा है ? नवयुवक ने उत्तर दिया कि कौवा है। बाप ने फिर प्रश्न किया कि यह क्या है ? लड़के ने नाक भौं चढ़ा कर कहा कि कौवा है। बाप ने जब तीसरी बार पूछा तो लड़के ने कहा–पिता जी ! क्या आप भांग तो नहीं पी आए जो मेरा सिर खाना शुरू कर दिया है, मैंने कितनी बार आपको बता दिया कि यह कौवा है अब क्यों मेरा पीछा किया है। बाप ने झट अपनी जेब से पुरानी डायरी निकाली और दिखा कर कहा—बेटा ! तुम तीसरी बार में ही चिढ़ गए किन्तु मैंने तो पूरा सौ बार उत्तर दिया था और यदि तुम इससे भी अधिक बार पूछते तो और भी उत्तर दिये चला जाता, तुमने ही पूछना बन्द कर दिया। इस कथा से यह बात स्पष्ट हो गई कि हमारे माता पिता ने जितना कष्ट हमारे लिए उठाया है उतना हम उनके लिए कभी नहीं उठा सकते। उतना कष्ट तो हम अपनी सन्तान के लिए ही उठा सकते हैं इसी लिए हमारे शास्त्रकारों ने उत्तम सन्तान अपने पीछे छोड़ जाने को पितृ ऋण चुकाने का साधन माना है। इसी प्रकार अनेक प्रकार के यज्ञ और विद्याओं के प्रचारक गृहस्थी ही हैं इस लिए इस आश्रम की निन्दा करना कोरा नास्तिकपना है।

अब प्रश्न यह है कि आज कल के गृहस्थी क्यों रोते दिखाई देते हैं वह अपने अनुभव के बल पर जो बात कहते हैं उसको

कैसे झुठलाया जाय। शास्त्रकार भी सच्चे और गृहस्थी भी सच्चे, इनका समाधान कैसे हो। 'लेखा ज्यों का त्यों कुनबा डूबा क्यों।' इस बात का उत्तर हम श्रीकृष्ण जी महाराज के शब्दों में देते हैं;[१] वह यह है कि कोई भी काम हो यदि उसे ठीक विधि से किया जायगा तो फल अच्छा निकलेगा यदि उसे अगड बगड किया जायगा तो परिणाम बहुत बुरा भी निकल सकता है। गृहस्थ आश्रम दुःख का कारण नहीं है बल्कि गृहस्थाश्रम मे शास्त्र विरुद्ध कर्म हमारे दुःख के कारण हैं। इस सम्बन्ध में तीन भारी भूल की जाती हैं अर्थात् (१) ठीक आयु में विवाह न करना, (२) अनमेल विवाह करना, (३) गृहस्थाश्रम को केवल विषय भोग का साधन समझना। आओ, इन दोषों पर एक-एक करके विचार करें।

विवाह का समय

वेद और शास्त्र ने स्पष्ट लिखा है कि विवाह उस आयु में उचित है जबकि वर और कन्या सन्तानोत्पत्ति के योग्य होकर उनको अच्छी प्रकार संभाल सकें। उनकी आर्थिक स्थिति इस योग्य होगई हो कि स्वतन्त्रता से अपनी जीविका उत्पन्न करके गृहस्थी के सब यज्ञादि पूरे निभा सकें और उनके विचार इतने परिपक्व हो गए हों कि वह विवाह की शास्त्रोक्त मर्यादा का

---

१ यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न शान्तिं न परां गतिम् ॥ भगवद्गीता।

भारी कष्ट पड़ने पर भी कभी उल्लंघन न करें[1]। इस प्रकार की आयु पुरुष की कम से कम २५ वर्ष और स्त्री को १६ वर्ष से पहिले नहीं आती। इससे पहिले जितने विवाह होते हैं उनमें अनेक प्रकार के दुःख निकलते हैं। मनुष्य की आयु का माध्यम वैदिक आदर्शानुसार १०० वर्ष का है[2] किन्तु वह घटते-घटते हम लोगों का २३ वर्ष रह गया है। आधे बच्चे १२ वर्ष से कम की आयु में क्षीण हो जाते हैं। किन्तु महाराज रामचन्द्र के समय माता पिता के सामने किसी बच्चे का मरना आश्चर्य की घटना मानी जाती थी। विचारों में किसी प्रकार की स्थिरता नहीं; यह सब कुछ बाल विवाह की खराबी है। माता पिता दादा दादी इतने पागल बने हुए हैं कि वह सन्तान का सुख विवाह कर देने में मानते हैं चाहे वह विवाह का अर्थ भी न जानते हों। छोटी

१ ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम ॥ **अथर्व वेद** ।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।

तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ **ऋग्वेद** ।

ऊनषोडशवर्षायाम, अप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।

यद्याधत्ते पुमान गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥

जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।

तस्मादत्यन्तबालाया गर्भाधान न कारयेत् ॥ **सुश्रुत शास्त्र** ।

योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ **मनु** ।

२ जीवेम शरदः शतम् ॥

आयु में विवाह होने से स्त्री पुरुषों में विद्या का प्रचार जाता रहा और इस आर्य-जाति में ९० प्रतिशतक से भी अधिक नर नारी निरक्षर रह गए। बल वीर्य का नाश कर बैठे और निस्तेज, रोगी और निर्धन होकर अनेक दुःख भोग रहे हैं। आश्रम-संकरता फैल गई। लड़का अभी एफ़० ए० में फेल हो रहा है उधर तीन लड़की और दो लड़के रात दिन खाने को मांगते हैं। बाप इसके कमाने की आशा पर कर्ज़ ले ले खा रहा है। स्त्री को बच्चों की पालना के परिश्रम और इस कुलक्षणी विद्यार्थी की काम पूर्ति के कारण क्षय रोग हो गया है। इस प्रकार के गृहस्थ नरक नहीं तो स्वर्ग का नमूना कहां से दिखलावें। कितने ही लड़के विवाह के पश्चात् मर जाते हैं और छोटी सी आयु में एक कन्या को विधवा करके बिठला जाते हैं वह सारी आयु भर दुःख रूपी भट्टी में सुलगता है। प्रत्येक प्राणी उसको घृणा की दृष्टि से देखता है। ऐसी बहुत सी स्त्रियां अनेक प्रकार के कुकर्म करती हैं। घरों से भाग जाती हैं। छुपकर पाप करतीं और गर्भ-हत्या करती हैं। इस प्रकार हिन्दू समाज की बहुत सी स्त्रियां इसके लिए कलंक रूप हैं। यदि बालविवाह का त्याग हो जाय तो यह बुराई शीघ्र नष्ट हो जावे। आर्य-समाज और स्वामी दयानन्द के प्रताप से हिन्दुओं को कुछ होश तो आगया है किन्तु अभी मूर्खों की इतनी बड़ी संख्या है कि सुधार का पूरा प्रभाव दिखाई नहीं देता। इस रोग को समूल नष्ट करना आप जैसे नव-युवकों का ध्येय होना चाहिए।

अनमेल विवाह

यह सबको विदित है कि यदि हम बाजार में दो पैसे की हंडिया भी लेते हैं तो उसे पहिले खूब ठोक बजाकर देख लेते हैं फिर पैसा निकाल कर देते हैं और यदि एक दो मील के वास्ते कोई तांगा किराए करना हो तो भी तांगा, घोड़ा और तांगे वाला इन सब की भली प्रकार परीक्षा करते हैं जिससे पीछे कोई कष्ट न हो। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि विवाह में जो कि गृहस्थाश्रम की एक भूमिका मात्र है इस नियम को भूल जाते हैं। यहां पर पैसे दो पैसे का या घंटे दो घंटे का प्रश्न नहीं है बल्कि दो व्यक्तियों के जीवन और मरण का प्रश्न है।

विवाह वह सम्बन्ध है जिसमें गणित विद्या के नियमों को दूर फेंक कर एक में एक जुड़ कर भी दो नहीं होते किन्तु एक ही रहते हैं। इस भाव को पुराणों में तो स्थूल करके दिखला दिया है अर्थात् शिव और पार्वती को एक ही शरीर में रख दिया है। इसका भाव यह है कि स्त्री पुरुष दोनों मिल कर एक गृहस्थ जीवन बनता है। एक के बिना दूसरा बिल्कुल अधूरा है। उनमें से प्रत्येक दूसरे के लिए अपने व्यक्तित्व को त्याग देता है[1] यह कब सम्भव है? क्या छोटी आयु में दोनों ओर के

१ मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तंते अस्तु।
समञ्जन्तु विश्वेदेवा समापो हृदयानि नौ॥ **विवाह प्रतिज्ञा।**

पुरोहितों द्वारा मंत्रोच्चारण से यह आदर्श पूरा हो सकता है। कितना अंधेर है कि जिन व्यक्तियों की आयु का सौदा हो रहा है उनका उस सौदे में कोई हाथ ही नहीं। इसका परिणाम सामने ही है। जब जवान होते हैं तो स्त्री का कुछ और स्वभाव निकलता है और पुरुष का कुछ और, एक पूर्व को खींचता है दूसरा पश्चिम को। ऐसे गृहस्थ की गाड़ी कहां जायगी यह आप सोच ही सकते हैं। इस तरह से गृहस्थ एक घृणा की चीज़ बना हुआ है। यदि विवाह से पहिले वर और कन्या का स्वभाव देख लिया जाय, उनके मनों का पता लग जाय और स्वेच्छापूर्वक एक दूसरे को पसन्द करके विवाह करें तो यह देवासुर संग्राम क्यों हो[1]। जिन पति-पत्नियों में परस्पर प्रेम न हो उनका गृहस्थ नरक के सिवा और हो ही क्या सकता है। इस लिए सुख चाहने वालों को इस बात का बहुत ध्यान रखना चाहिए कि वह अपना विवाह खूब सोच समझ कर अपने अनुकूल पति या पत्नी से करें। इस में चूक पड़ने से सारी आयु दुःख होगा। याद रखो, केवल सुन्दराकृति देख कर कहीं लुट मत जाना। आकृति भी एक अच्छा गुण है किन्तु उसी को सर्वस्व मान कर बहुत धोखा हो जायगा। इस लिए इस कार्य में अपने अनुभवी माता पिता या गुरु आदि की अवश्य सहायता लेना। वह आप की ठीक जोड़ी मिला सकेंगे।

---

1 सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ मनु।

गृहस्थाश्रम का उद्देश्य

गृहस्थ को केवल भोग का आश्रम मानना भी इस को नरक बना रहा है। स्त्री को शास्त्रकारों ने तो स्पष्टतया सहधर्मिणी माना है। उनके कथनानुसार गृहस्थ एक बड़ा भारी धर्मयज्ञ है जिसे दोनों मिलकर ही पूरा कर सकते हैं। शास्त्रानुसार पति-पत्नी की प्रत्येक चेष्टा धर्म की रज्जू में बंधी होती है। और वह केवल उत्तम सन्तान के लिए ही एक दूसरे से सहवास करते हैं। उस में जो सुख है वह आनुषंगिक है, उद्देश्य नहीं है ऐसे सात्विक सुख को भोगते हुए वह कभी भी रोग-ग्रस्त नहीं होते और न ही पाप की कीचड़ में धंसते हैं। इस उत्तम आदर्श का लोप पहिले तो पंथायी लोगों ने किया। कृष्ण भगवान तक के साथ सोलह हज़ार स्त्रियों की पलटन खड़ी करके आर्य-संस्कृति पर अभिमान करने वालों को चुल्लूभर पानी में नाक डुबो कर मरने का स्थान न छोड़ा। उधर तुलसी जैसे कवियों ने स्त्रियों को गंवार और पशु बतला कर पुरुष के लिए उन पर अत्याचार का रास्ता खोल दिया। सारांश यह है कि मध्यकाल में स्त्री की स्थिति गृहस्थाश्रम में पैर की जूती के समान रह गई और मनु के समय का उनके लिए उच्च भाव[1] बिल्कुल नाम को भी न रहा। जब स्त्रियों के साथ वैदिक व्यवहार न रहा और उधर पाश्चात्य

१ प्रजनार्थं महाभागा: पूजार्हा गृहदीप्तय: ।
स्त्रिय: श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ मनु ।

विचारों ने भारतवर्ष में जोर बांधा; फिर क्या था यह सब पाप वेद शास्त्रों के नाम मंढ़ा गया और बाबू तथा बबुआइन ख़ूब ऐनक लगा २ कर प्राचीन समय को कोसने लगे। स्त्री सभाओं में आज रात दिन यही पुकार है कि हमारा अधिकार पुरुषों के बराबर है, हम गुलाम नहीं हैं। हम क्यों घर का काम करें मर्द क्यों न करें। इस प्रकार के योरोपीय विचारों ने क्या परिणाम दिखाया इसका भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेना मनोरंजन और शिक्षा में खाली न होगा। आपने बहुधा अंग्रेज़ी फैशन के भारतीय साहिबों और उनकी मिडिल फैल मेमों को शहरों की सड़कों पर घूमते देखा होगा। यह महाशय स्त्री और पुरुष की एकता और समानता की तस्वीर हैं। दोनों के अधिकार बराबर हैं इस बात के वे पक्के प्रचारक हैं। शायद इसी लिए साहिब बहादुर ने मूँछ मुण्डवा कर परमात्मा की भी भूल सुधार दी है। बच्चे या तो बर्थकंटरोलादि की दवाई द्वारा पैदा ही नहीं करते, या करते भी हैं तो बहरे आदि के सुपुर्द करके दोनों बेरंग ही दिखाई देते हैं। स्त्री को रंग बरंगे कपड़े पहिना कर एक तितरी बना दिया है। दिन में कई बार फैशन पलटे जाते हैं और साहिब बहादुर एक पतंग की तरह उसके चारों ओर मण्डलाये रहते हैं। वेतन यद्यपि पांच सौ मिलता है किन्तु नाकाफी है और कभी २ रेल में बिना टिकट जाना और तांगे वाले को वैसे ही टरकाना पड़ता है। होटल मे चाय बिसकुट उड़ा कर रूमाल से मुँह पूंछ कर तो सैंकड़ों बार साफ निकल गये हैं। सारांश

यह कि महीने के पिछले पांच दिन तो बुरे बीतते हैं। ऐसा भोग-प्रधान जीवन कब तक निभ सकता है। जब सब तरह से समान अधिकार हैं तो किसी अखबार के मेटरी मोनिपल कालम को देखने में क्यों किसी से पीछे रहें। और फिर ड्रामे का दूसरा दृश्य आरम्भ हो जाता है। ऐसा गृहस्थ किसको सुख दे सकता है! क्या कोई अधिकारी पात्र ऐसे गृहस्थियों से कुछ आशा करने की मूर्खता कर सकता है? यदि उनकी जेब से पैसा निकालना हो तो किसी कलाल के घर जन्म लो, साधु सन्तों का वहाँ क्या काम? ऐसे घरों से तो वह लाख दर्जे अच्छे हैं जहाँ मर्द अपने परिश्रम से चालीस पचास रुपया मासिक लाता है और स्त्री अपने घर में बड़ी चतुराई से उनको खरच करती है। अपने बच्चों का पेट पालती है। विवाह शादी के लिये कुछ बचा भी लेती है और आए गए साधु महात्मा की सेवा या विद्यादि धर्म के कामों में भी पीछा नहीं दिखाती।

तनिक ध्यान करो—समानता का क्या अर्थ है। क्या समानता इसी में है कि स्त्री रोटी पकाना छोड़ दे और चौबीस घण्टे मर्द के कन्धे पर चढ़ी रहे। यदि इसी को समानता कहेंगे तो यह भी करना पड़ेगा कि एक बच्चा मेम साहिबा पैदा करें तो एक बाबू जी के गर्भ से हो। नहीं तो विषमता आ जायगी। मेम साहिबा का वज़न मुशकिल से एक मन है और साहिब बहादुर पूरे सतरह धड़ी के; इस विषमता को बीसवीं शताब्दी में कौन सहन करेगा। वास्तव में इसका नाम समानता नहीं है। समानता

इसका नाम है कि गृहस्थ रूपी कारखाने के चलाने में दोनों की बराबर जिम्मेवारी है। इसमें भिन्न २ प्रकार के कार्य हैं। कोई कार्य पुरुष के लिए अनुकूल पड़ता है और कोई स्त्री के लिए। दोनों अपने अनुकूल कार्य को चुन लें और प्रसन्नता से करते रहें। प्रकृति ने स्त्री को अबला बनाया है। उसमें प्रेम का भाव अधिक और चातुर्य का कम रखा गया है। बालकों का लालन पालन, घर की देख रेख आदि कार्य उसके हाथ में अधिक सफलता से समाप्त होते हैं। इसके विपरीत पुरुष घर से बाहिर निकल कर अपने जौहर दिखलाता है। वही उसका वास्तविक कार्यक्षेत्र है। घर में तो वह स्त्री के आधीन है क्योंकि घर वाली वही है[1]। इस श्रम विभाग को बिगाड़ कर प्रकृति के नियमों को तोड़ना है और उसका भयानक परिणाम अनिवार्य है।

इस प्रकार आपने देख लिया कि गृहस्थ धर्म के बिगाड़ने वाले तीन बड़े दोष हैं। छोटी आयु का विवाह, अनमेल विवाह और अत्यन्त विषयासक्ति। यदि इन तीन दोषों को छोड़ कर गृहस्थ धर्म को शास्त्रानुकूल निबाहा जावे तो इससे अपना और पराया सुख सम्पादित होता है। लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं और संसार एक आनन्द का धाम बन सकता है।

अब उन लोगों की बात पर ध्यान कीजिये जो यह कहते हैं कि विवाह नहीं करना चाहिए इससे स्वतंत्रता नष्ट होती है।

---

१ न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते।

इस कथन की तह में दो प्रकार की मनोवृत्ति हो सकती है एक यह कि उनके मन में श्री स्वामी दयानन्द या स्वामी शंकरा-चार्य की तरह बाल ब्रह्मचारी रहकर संसार का उपकार करने का भाव हो। यह भावना बड़ी धन्य है। किन्तु यह मार्ग स्वतंत्रता का नहीं है। इसमें बड़ी भारी आपत्ति का सामना करना होगा। कम से कम गृहस्थ की अपेक्षा इसमें अधिक कष्ट होगा। इसमें चूक पड़ने से बहुत अधोगति की प्राप्ति होगी। इस मार्ग का ठीक अनुसरण करने वाले लाखों और करोड़ों में एक दो हुआ करते हैं। यह साधारण मनुष्यों का मार्ग नहीं है। इस मार्ग के पथिक को, इस बीसवीं सदी की तड़क भड़क, खेल तमाशे, राग रंग, और नाच कूद जिसके कि हमारे अविवाहित रहना पसन्द करने वाले नौजवान शौकीन होते हैं, विष के समान लगेंगे। दूसरा भाव यह हो सकता है कि कौन टंटे में पड़े, खाओ, पीओ मौज करो। जहां दिल लग गया मेलकर लिया, जब उखड़ गया हटा लिया, कौन बच्चे पैदा करे और पाले। देश को आज कल बहुत बच्चों की जरूरत भी नहीं है। पहिले ही बहुत से गुलाम फिरते हैं। वास्तव में इसी मनोवृत्ति का शिकार होकर बहुत से युवक और युवती विवाह से मुख मोड़ते हैं। वह विवाह के स्वाद को तो कई गुणा करके भोगना चाहते हैं। किन्तु उसकी जिम्मेवारी और परिश्रम से बिल्कुल बचना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में वह पक्के हरामखोर बनना चाहते हैं। यह विचार कितना नीच और दुष्टता से भरा है इसका कोई हिसाब

नहीं। यदि कोई ज़मींदार एक साहूकार से कर्ज़ लेकर खाता रहे और जब उसकी खेती तय्यार हो तब कहदे कि यह कर्ज़ का लेना देना ही निकम्मा है हम इसे चुकाने के टंटे में क्यों पड़ें उसको आप महानीच समझेंगे। इसी प्रकार कोई शहरी अपने शहर की सड़कों, स्कूलों, हस्पताल, रोशनी आदि से खूब लाभ उठाता है किन्तु जिस टैक्स से यह सब कार्य चल रहे हैं उसको वह नहीं देता और बहाना बनाकर बच जाता है; वह एक प्रकार से सारे शहर का चोर है उसको बहुत नीच समझना चाहिए। ऐसे ही जिन लोगों ने गृहस्थ के प्रबन्ध में पालन पोषण प्राप्त किया, पढ़ लिखकर साढ़े पाँच फुट के जवान हो गए। जब अपने माता पिता, आचार्य और राष्ट्र की सेवा का समय आया तब इस को टंटा बतलाने लगे। साधारण सा कर्ज़ा लेकर भागने वाले मनुष्य को कैद तक हो सकती है। किन्तु यह कुलक्षणी कुलांगार तो बड़ा भारी कर्ज़ा मारने की ठाने बैठे हैं; इनका क्या हाल होना चाहिए यह आप ही सोचिए।

नवयुवको! विवाहकी वैदिक मर्यादा को समझो और गृहस्थ आश्रम को एक स्वर्ग का नमूना बनाकर दिखा दो। संसार ने सब प्रकार के अगड बगड अनुभव करके देख लिए हैं फिर उन परीक्षणों को दोहरा कर दुःख के भागी मत बनो। आप के ऋषियों ने इस विषय में अन्तिम निर्णय दे दिया है। इससे अधिक सुख और किसी मार्ग में प्राप्त नहीं होगा अतः उन्हीं के पग-चिन्हों पर चल कर आप सुख पाओ और संसार में सुख फैलाओ।

वानप्रस्थ

गृहस्थी के घर में जब लड़का इस योग्य हो जावे कि अपने कार्य को संभाल सके तो वह निश्चिन्त होकर अपने गृहस्थ के भार को लड़के के कन्धे पर रख दे और आप घर से बाहिर जंगल में कुटी बनाकर रहे और जाति के बच्चों की शिक्षा का कार्य करे। प्राचीन समय में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा इन्हीं वानप्रस्थी महानुभावों की कृपा से दी जाती थी। यह लोग विद्वान, अनुभवी, त्यागी और तपस्वी होते थे। इनकी शिक्षा का प्रभाव बच्चों पर बहुत ही उत्तम पड़ता था। राजा से लेकर रंक तक के बालक इसी प्रकार के गुरुकुलों में पढ़ते थे और समय आने पर अपने देश और जाति की खूब सेवा करते थे। आज कल घरों में बहुत सी कलह इस वास्ते भी रहती है कि बेटा जवान होकर कार्य करने योग्य हो जाता है किन्तु पिता ताला-कुञ्जी सम्भाले बैठा है और लड़के को कोई अवसर ही नहीं देता कि वह भी कुछ कर सके। इस कलह का अन्त करने के लिए वानप्रस्थ आश्रम बहुत उपयोगी है। वैसे भी देखा जाय तो घर को समय आने पर छोड़ना ही उचित है। जो लोग नदी पार करने के लिए

नाव पर चढ़ते हैं वह दूसरे किनारे पर पहुँचते ही तुरन्त नाव में से बाहिर कूद पड़ते हैं एक क्षण भी उसमें रहना पसन्द नहीं करते। क्योंकि दूसरे किनारे पर वह किसी उद्देश्य से आए हैं उनको वहां कार्य करना है। इसी तरह से गृहस्थ आश्रम अपने कुल धर्मों को चलाए रखने के लिए धारण किया जाता है। जब उस धर्म को सम्भालने वाला पैदा हो गया तो समझलो कि दूसरा किनारा आ गया अब इस कैद में रहने से क्या लाभ। अपने जीवन को सुधारने के लिए भगवान् का भजन करो। और जाति के बच्चों को शिक्षा देकर ऋषि-ऋण से मुक्त हो। ऐसा न करके जो लोग चारपाई पर सड़कर मरते हैं। वृद्धावस्था में नए २ विवाह कराकर भोग और रोग में फंसे रहते हैं वह गृहस्थ धर्म को कलुषित करने और देश में निरक्षरता के पाप के भागी बनते हैं। उन का अपमान होना अनिवार्य है। इसलिए अपने जीवन को सुख और शान्तिमय बनाने के लिए वानप्रस्थाश्रम अत्यन्तावश्यक है। इस तरह से आपके यज्ञोपवीत के तीन तार आपको ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम को धर्मपूर्वक पूर्ण करने की याद दिलाते हैं। आशा है कि इस भाव को आप अपने मनमें दृढ़ता से धारण करेंगे। और अपने जीवन को पूर्ण वैदिक धर्मानुसार व्यतीत करेंगे। ऐसा करने से आपको मनुष्य जीवन के स्वाद का पता लग जायगा। इन तीन आश्रमों को पूरा करने के पश्चात् आपके सिर पर कोई ऋण शेष नहीं रहेगा।

संन्यास

वानप्रस्थाश्रम के पश्चात् मनुष्य के ऊपर कोई भी ऋण शेष नहीं रहता। वह फिर जीवन मुक्त हो जाता है। फिर यदि उसको पूर्ण वैराग्य होगया हो तो संसार के उपकार के लिए संन्यास ग्रहण करले। संन्यास ग्रहण के पश्चात् उसके मनमें प्राणि-मात्र के लिए दया उत्पन्न हो जाती है। वह लोगों की भलाई के लिए कल्याण का उपदेश देता हुआ जहाँ-तहाँ विचरता है। उसको न धनकी इच्छा होती है, न कुटुम्ब का मोह है, न प्रशंसा सुनकर हर्ष और न ही निन्दा सुनके शोक होता है[1]। उसका प्रत्येक कार्य परलोक के लिए है। ऐसे साधु महात्मा संसार के दुःख की मात्रा बहुत कम कर देते हैं और देश तथा जाति में आस्तिक भावों का संचार कर देते हैं। क्योंकि वह पक्षपात से शून्य होते हैं, विद्या और तप का कोष हैं अतः उनके मुख से जो भी वचन निकलता है वह सत्य ही हो

---

१ पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च,
व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति। शतपथ ब्राह्मण।
यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥ मनु।

जाता है। अर्थात् वह अमोघ वाणी महात्मा हैं। जिसको ऐसी सद्गति प्राप्त हो जावे वह धन्य है। इसके विपरीत आपको बहुत से नाम मात्र के साधु फिरते मिलेंगे। उनका काम केवल मांगकर खाना ही है। इस निर्धन देश के ऊपर वह भार रूप ही हैं। उनका कुछ भी मान और प्रतिष्ठा नहीं होनी चाहिए। बल्कि उनको ठग समझना चाहिए जोकि यतियों के वेष की आड़ में अनेक प्रकार के कुकर्म करते हैं। आप लोगों को चाहिए कि ऐसे धूर्तों का सदा खण्डन किया करें और शुद्ध वैदिक आश्रम मर्यादा का भली भांति प्रचार करें।

वर्णव्यवस्था

आपके यज्ञोपवीत के तीन तार यह संकेत करते हैं कि आप ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य इन तीनों वर्णों में से किसी एक को चुन लें और फिर उसी के गुणों को धारण करके अपने रोम रोम में उन गुणों का परिचय दें। यह वर्ण क्या हैं, कैसे बने और उनके क्या धर्म हैं, यह जानना आवश्यक है इसलिए नीचे इसी विषय में आपको कुछ बतलाया जाता है।

संसार के जितने भी प्राणी हैं वे बड़े होकर अपनी जाति के अन्य प्राणियों की सहायता के बिना ही अपना निर्वाह करते हैं। एक भैंस को अपनी जीवन यात्रा समाप्त करने के लिए किसी अन्य भैंस की आवश्यकता नहीं है। और न किसी कुत्ते को दूसरे कुत्ते की। किन्तु मनुष्य की अवस्था बिल्कुल भिन्न है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्यों की सहायता के बिना मनुष्य ही नहीं रह सकता, वह पशु बन जायगा। उदाहरणार्थ—आप जो कपड़े पहिन रहे हैं उन पर न जाने कितने मनुष्यों की मेहनत और कारीगरी लगी है तब आपको मिले हैं। अर्थात् किसान ने रुई पैदा की, उसको रेलगाड़ी कारखाने तक ले गई, किसी ने तोला, किसी ने धुना, किसी ने काता, किसी ने धोया, कोई बाजार

में लाया, किसी ने खरीदा और किसी ने सींया, तब कहीं आप को मिला। आप जो भाषा बोलते हैं वह भी आपने दूसरे मनुष्यों से सीखी है। इसी प्रकार अपनी किसी भी आवश्यकता की ओर ध्यान करके देखेंगे तो पता लगेगा कि आपका जीवन प्रत्येक क्षण में दूसरे मनुष्यों के परिश्रम पर निर्भर है। सारांश यह कि मनुष्य बिना दूसरे मनुष्यों की सहायता के मनुष्य नहीं रह सकता। यह एक सामाजिक या सभ्यप्राणी है[1]।

जब यह अवस्था है तो आपको और मनुष्यों के परिश्रम के बदले कुछ ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे कि आप उन सब का बदला उतार सकें। या तो आपको औरों का कुछ काम करना पड़ेगा या अपने लिए सब काम आप ही करना होगा। इसके लिए आपको लुहार, जुलाहा, किसान, धोबी, चमार, भंगी, गाड़ीवान, तांगेवाला और न जाने क्या २ बनना पड़ेगा। आप के लिये ऐसा करना असम्भव है इसलिये आपको पहिली अवस्था पसन्द होगी अर्थात् कुछ काम आप औरों का कर दिया करेंगे और उसके बदले अपनी जीवन यात्रा की सामग्री मनुष्य समाज से लेते रहेंगे। यह कार्य अच्छी प्रकार तभी हो सकेगा जब कि आप सब संसार को एक बड़ा भारी परिवार समझें। जिस प्रकार परिवार में बच्चे, जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरुष मिल कर अपने २ योग्य कार्य चुन लेते हैं वैसे ही समाज में

1 Man is a social being.

भी यह देखना पड़ेगा कि कौन मनुष्य कितना और किस प्रकार का कार्य कर सकता है और उसकी क्या २ आवश्यकताएँ हैं। जिस प्रकार परिवार में सब की आवश्यकताएं और कार्य शक्ति तथा योग्यता भिन्न २ होती है वैसे ही समाज में भी समझना होगा। घर में बड़े भाई का पाजामा चौदह गिरह नीचा और छोटे का बारह गिरह नीचा बनने मे कोई ऊधम नहीं मचता क्योंकि वह जानते हैं कि दोनों की आवश्यकता भिन्न हैं। पिता का जो मान परिवार में है वह बेटे का नहीं होता इसमें बेटा कहीं मान हानि का दावा नहीं कर देता। बहू के पास जितने आभूषण हैं उसके चौथाई भी बुढ़िया सास के पास नहीं होते इसमें कोई बुढ़िया कुएँ में गिर कर आत्मघात करती दिखाई नहीं देती। बात यह है कि सब का मन मिला हुआ है। वह सब के दुःख सुख को समान ही समझते हैं। उनकी दृष्टि में घर मुख्य और व्यक्ति गौण हैं। यही वेद का गण धर्म है।[1] यदि आपके परिवार में जाकर कोई बाहिर का आदमी आपके छोटे भाई को यह बहका कर लड़ाना चाहे कि देखो तुम्हारा घर में कुछ भी आदर नहीं, तुम्हें केवल बारह गिरह नीचा पाजामा मिला है और बड़े भाई को चौदह गिरह नीचा। तुम और वह एक ही घर में तमाम अधिकार लेकर पैदा हुए हो।

१ सगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ यजुर्वेद।

अपने अधिकार की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। अत्याचार करने वाले से अत्याचार सहने वाला अधिक पापी है, तो आप दोनों भाई उस मूर्ख की बातों का मखौल करेंगे और कहेंगे कि "अरे चिड़ी लड़ावा! अपने घर जा, हम दोनों अपने अधिकारों को खूब जानते हैं यहां तुम्हारे जैसों की दाल नहीं गलेगी।" वास्तव में ऐसे चिड़ी लड़ावे संसार में बहुत पैदा हो गए हैं जो लोगों को बहकाते रहते हैं कि संसार में सब मनुष्य एक समान हैं सब को बराबर मजदूरी, बराबर मान और बराबर ही सब अधिकार मिलने चाहिएं। वह लोग इस संसार के पारिवारिक रूप को मिटाकर एक दंगल का रूप देना चाहते हैं जिसमें अमीर गरीब, बूढ़े जवान, स्त्री पुरुषों और शहरी देहातियों के नित्य प्रति दंगल हुआ करें और समाज कलह का घर बन जावे। आप कभी भी इन लोगों की बहकाई में न आवें। संसार में समानता कहीं भी नहीं है, भूमि कहीं नीची है और कहीं ऊंची, सब मनुष्यों के रंग रूप बुद्धि भिन्न-भिन्न हैं। सब के कर्म पृथक् हैं तब फल एक जैसा कैसे हो सकता है। आज यदि सब धन को बराबर-बराबर बांट भी दिया जाय तो कल को कोई उसे अपनी बुद्धि से दुगना कर लेगा और कोई नष्ट कर देगा। नाव भूमि पर नहीं चल सकती और गाड़ी जल में व्यर्थ हो जाती है। इसलिए समानता का यही अर्थ है कि सबको अपनी योग्यतानुसार कार्य और कर्मानुसार फल मिले। इसी

प्रकार संसार का निर्वाह हो सकता है अन्यथा नहीं। दूसरों के धन और मान को देखकर जलते रहना भारी नास्तिकता है।

इस बखेड़े को दूर करने के लिए वेद में सब मनुष्य समाज को एक शरीर रूप मे वर्णन किया है और उसके अंगों के दृष्टान्त मे मनुष्यों के भिन्न-भिन्न कर्म और दरजे बतलाए हैं[1]। इस सब समाज को एक शरीर समझ कर उसके गरदन मे ऊपर के भाग को ब्राह्मण, भुजाओं को क्षत्रिय, पेट को वैश्य और टांगों को शूद्र कहा गया है। इसी दृष्टान्त मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऊपर नीचे समझे जाते हैं। किन्तु सबके सब एक ही शरीर के अंग हैं अतः उनमें मे किसी का भी महत्व कम नहीं है। शरीर में सब म अधिक ज्ञान के साधन गरदन मे ऊपर के भाग में हैं अर्थात् पाँचों ज्ञानेन्द्रिय वहां पर विद्यमान हैं शेष शरीर में केवल स्पर्श शक्ति ही है; इस से सिद्ध हुआ कि ज्ञान प्रधान व्यक्ति को ब्राह्मण कहना चाहिए। मुख में ज्ञान के अतिरिक्त एक गुण यह है कि यह त्याग-शील और तपस्वी है। यह भाग सब मे कम कपड़े पहिनता है और सब से कम मांस अपने पर लपेटे हुए है। इसी तरह मे ब्राह्मण में ज्ञान, तप और त्याग होना चाहिए।

१ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥ यजुर्वेद ।

जिस व्यक्ति में यह गुण प्रधानता से हों उसको ब्राह्मण कहना और मानना चाहिए। ब्राह्मणों का धर्म यही है कि पूर्ण विद्वान होकर उस विद्या का लाभ संसार को दें, आप न उठावें। ब्राह्मण को जान बूझकर कंगाल होना चाहिए। मान-पूर्वक अपने यजमानों के दिए हुए अन्न से निर्वाह करना चाहिए। ऐसा करने से उसका आत्मा इतना बलवान हो जाता है कि वह चक्रवर्ती राजा की भी भूल पकड़ कर उसे फटकार देता है।

क्षत्रिय का वही कर्म है जो भुजाओं का शरीर में है अर्थात् भुजाएँ सब शरीर की रक्षा करती हैं। जब कभी लड़ाई में शत्रु आपके सिर या टांगों पर चोट मारने लगता है तो भुजाएँ अपने आप आगे होकर चोट को अपने पर ले लेती हैं और दूसरे अंगो की रक्षा करती हैं। श्रेणी में जब कभी अध्यापक विद्यार्थी के मुख पर चपेटा मारने लगता है तो विद्यार्थी बीच में हाथ करके मुख को छुपा लेता है और हाथ को पिटवा लेता है। यही गुण समाज में क्षत्रियों का होना चाहिए। जब कभी बाहिर का शत्रु देश पर आक्रमण करने आवे सबको अभय दान देकर आप उसकी टक्कर लेता है। इसी में उसका क्षात्रधर्म है। महाराज रामचन्द्र ने जान हथेली पर रखकर राक्षसों से युद्ध किया और मुनियों के यज्ञों की रक्षा की। राजपूतों ने महाराणा प्रताप के पीछे लगकर अपनी प्यारी जन्म-भूमि की रक्षा में हंसते हंसते प्राण न्योछावर कर दिए। कहां तक गिनावें, मेवाड़ की भूमि का चप्पा-चप्पा

वीर क्षत्रियों की रक्त धारा मे रंगा पड़ा है। गुरु गोविन्दसिंहजी ने अपने चारों पुत्र इसी क्षात्र धर्म को पालन करते हुए देश-रक्षा की बलि पर चढ़ा दिए और अन्त में स्वयं भी वीर-गति को प्राप्त हुए। यह मौत के साथ खेलना और उच्च भावों को अपने अन्दर धारण करना यूंही नहीं आ जाता। इसके लिए बड़ी साधना और उपदेश की आवश्यकता है। अतः आपमें से जो क्षत्रिय बनना चाहें उनको उपरोक्त महानुभावों जैसे गुण धारण करने होंगे। इसके आगे शरीर में पेट आता है। यह शरीर का एक प्रकार का स्टोर रूम है। सब खाया पीया यहां पर जमा हो जाता है। यही भाग सब से मोटा होता है। किन्तु एक बात याद रखनी चाहिए—यदि पेट में स्वार्थ आजाए और भोजन का रस बनाकर सिर से पाओं तक पहुँचाना छोड़ दे तो सब शरीर अस्वस्थ हो जाय और शायद जुलाब या अनीमा द्वारा पेट में एकत्रित हुए सब सामान को हठ से निकालना पड़े। इसी प्रकार वैश्य सबसे बड़ा धनी होता है। संसार के सब वाणिज्य व्यापार खेती कारखाने आदि इसीकी सम्पत्ति हैं। शहर में इसीके महलों की चोटी सब से ऊँची दिखाई देती हैं। इसी की मोटरें सड़कों को सबसे अधिक रौंदती फिरती हैं। किन्तु इस सम्पत्ति को अकेले खाने का इसका अधिकार नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्रों का पालन पोषण करना इसी का कर्त्तव्य है। इनको भिन्न-भिन्न रीति से धन देना इसका अनिवार्य धर्म है। ब्राह्मणों को भक्ति-भाव से दक्षिणा के

रूप मे, क्षत्रियों को कर के रूप में, और शूद्रों को वेतन के रूप में यह धन देता है। यदि यह अपने इस धर्म को छोड़ कर कंजूसी बन जाए तो इसीके घर में डाके पड़ने लगते हैं और कंजूसी का फल इसको तुरन्त मिल जाता है। इस लिए वैश्य का मुख्य धर्म धन पैदा करना, तरह २ की कला कौशल द्वारा संसार की संपत्ति बढ़ाना और उसे पात्रों में बांटना है। सेठ भामाशाह का नाम भारत के इतिहास में सदा उज्ज्वल रहेगा। महाराणा प्रताप निरन्तर युद्ध करते २ बिल्कुल कंगाल हो गए। महलों के सब सुख छोड़ कर जंगल की घास फूंस की रोटी पर अपना और अपने छोटे २ बालकों का निर्वाह करने लगे। जब इस प्रकार भी गुज़ारा होता दिखाई न दिया तो निराशा के बादल उस के मन में छा गए। इस विकट समय में जब कि महाराणा देश छोड़ कर भागने की ठान बैठे, इस दान-वीर भामाशाह ने उन के घोड़े की बाग पकड़ली और अपने बाप दादों का इकट्ठा किया हुआ खजाना सौंप दिया। फिर क्या था, सूखे हुए बागीचे में फिर से हरियाली आगई, नए सिरे से सेना भरती करली गई और अकबर सम्राट् के वह छक्के छुड़ाये कि उसने अन्त में महाराणा से भिड़ना ही छोड़ दिया। धन्य वीर भामाशाह को जिसने वैश्य जाति का मुख उज्ज्वल किया। धन की यही शोभा है। केवल आप ही लाखों रुपयों को खाकर टट्टी बना देना वैश्यपना नहीं है, यह ठगी है। इसलिए सच्चे वैश्य भी आर्य जाति के

भूषण थे और आज इस जाति को ऐसे ही दानवीरों की आवश्यकता है। जिससे कि इसके अविद्या निर्धनता और आलस्यादि रोग दूर होकर इसका पुनः मुख उज्ज्वल हो।

इस प्रकार इन तीन वर्णों को द्विज कहते हैं क्योंकि इन के दो बार जन्म होते हैं एक तो माता के गर्भ से दूसरा गुरु के यहाँ होता है, जिसमें विद्या माता और आचार्य पिता होता है। यही तीन वर्ण यज्ञोपवीत धारण करते हैं। शेष वह बच गए जोकि उपरोक्त तीनों कार्यों में से किसी के भी योग्य नहीं हैं जिन को पढ़ाने से भी विद्या नहीं आई और मूर्ख ही रह गए। ऐसे व्यक्तियों को भी समाज से निकाल कर भगाया नहीं जा सकता। उनके योग्य भी कुछ काम होना चाहिए सो सेवा का मोटा काम उनको सौंपा गया है जिससे कि वह निकम्मे न रहें और बेफिक्र होकर तीनों वर्णों से अपनी जीविका प्राप्त करते रहें। उन को इस बात का स्वाद है कि उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं, चाहे आटा किसी भाव बिको उनका रोटी कपड़ा तो तीनों वर्णों के सिर लिखा गया। चाहे उच्च वर्ण भूखे रहें इनको अवश्य भोजन मिलेगा। यही इन का जन्म-सिद्ध अधिकार है। पैर भी शरीर का बोझा उठाए फिरते हैं। किन्तु शेष किसी प्रकार की चिन्ता अपने पर नहीं लेते। न इन को स्वास्थ्य के नियमों का चिन्तन करना पड़ता है, न पाचन क्रिया में इनका कोई भाग है। यह तो निश्चिन्त होकर खूब दृढ़ हो जाते हैं और मौज से रहते हैं।

आजकल कई पक्षे बाज़ शूद्रों और अन्य वर्णों में लड़ाई कराने के लिए यह कहा करते हैं कि हिन्दू शास्त्रों ने शूद्रों पर बड़ा अत्याचार किया है, उन को पढ़ाई लिखाई से वंचित रख दिया। उनको ऊपर उठने का कोई अवसर नहीं देते और उनसे सेवा कराते और आप मज़े उड़ाते हैं। इस बात में इतना तो सत्य है कि सनातनधर्मी या पौराणिक हिन्दू जन्म से ही मनुष्यों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मानते हैं और शूद्रों को वेद का अधिकार नहीं मानते। किन्तु यह बात वेद और शास्त्रों के बिल्कुल विरुद्ध है। शास्त्र किसी को जन्म से शूद्र नहीं मानते और सब के लिए चारों वर्णों का द्वार खुला रखते हैं। जिसके जैसे गुण कर्म और स्वभाव हों उस को वैसा ही मानते हैं।[1] अब रहा सेवा आदि का काम और न्यूनाधिक मान यह अनिवार्य है। पाओं की यह मांग तो युक्तिसंगत कही जा सकती है कि जब सिर को पगड़ी मिली है तो हम को जूता दो। किन्तु उन को यह मत बहकाओ कि तुम भी एक हैट मांगो। हैट पहिनना पाओं की स्वाभाविक मांग नहीं है यह तो शरारती लोगों के बहकाए से मांग रहे हैं। धर्म के गूढ़ तत्व, और राज्य की पेचीदा बातें ब्राह्मण क्षत्रिय ही सुलझा लेंगे। हरेक का उन में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए नहीं तो गड़बड़ हो जावेगी। दूसरी

---

१ शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ मनु।

बात यह है कि कोई व्यक्ति सात पीढ़ी के शूद्रत्व का ठेका क्यों लेता है। क्या पता उसका बेटा ब्राह्मण ही बन जाय। सो ब्राह्मणादि वर्ण किसी परिवार के लिए स्थिर सम्पत्ति नहीं हैं। यह तो गुणकर्मस्वभावानुसार बदलते रहेंगे। फिर एक दूसरे से वैमनस्य रखना अच्छा नहीं। सब ऊँचा बनना अपना लक्ष्य रखें किन्तु बिना योग्यता के झूठी पेंठ धारण न करें और "पण्डित तोताराम शर्मा पकोड़ी वाले" कभी न बनें। आपस में सब वर्ण एक ही शरीर के अङ्ग हैं। इस बात को कभी न भूलें अन्यथा दूसरे लोग आपके अन्दर फूट डलवा देंगे। कहते हैं कि चार मनुष्य इकट्ठे जा रहे थे। उन में एक ब्राह्मण था, एक जाट, एक वैश्य और एक नाई। वह चारों एक गन्ने के खेत में से निकले तो सब ने एक २ गन्ना उखाड़ लिया। खेत के मालिक ने देखा कि चार आदमी खेत उजाड़ रहे हैं किन्तु चारों से एक दम कैसे निपटूं। खैर, उनको मानपूर्वक बुलाया और प्रत्येक की जाति पूछी फिर कहने लगा कि 'आप तो हमारे पुरोहित हैं, आप हमारे भाई जमींदार हैं और आप हमारे सेठ जी हैं किन्तु यह कमीन नाई हमारा क्या लगता है इसने खेत में हाथ डालने का कैसे साहस किया।' ऐसा कहकर उसके हाथ में से गन्ना छीन लिया और पीट कर घर का रास्ता बता दिया। इसी प्रकार बारी २ से वैश्य जाट और ब्राह्मण को भी उस ने नाप लिया और एक २ की खूब मरम्मत की। ऐसे ही इस आर्य जाति के शत्रु कभी इस में छूत अछूत का भेद डालते हैं, कभी ब्राह्मण और गैर ब्राह्मण का। यह

सब बातें हम को सताने की हैं। यह वर्ण केवल योग्यतानुसार कार्य बांटने के लिए बनाए गए थे कोई जाति भेद नहीं था। हम सब एक ही जाति के हैं, एक ही संस्कृति के मानने वाले हैं। किसी प्रकार का वैमनस्य हमारे में नहीं होना चाहिए। यही वर्णव्यवस्था का असली स्वरूप है। आशा है आप इसको समझ कर जाति के भेद भावों को दूर करने में सफल होंगे।

स्वदेश सेवा

वैसे तो मनुष्य मात्र हमारे लिए भाई हैं और वैदिकधर्मी को सब का ही कल्याण सोचना चाहिए फिर भी जिस देश में हम रहते हैं, जिन लोगों का हमारे साथ रात दिन वास्ता पड़ता है उनके प्रति हमारा विशेष कर्त्तव्य है। हमारे वैयक्तिक सुखकेलिए यह आवश्यक है कि हमारे अड़ौस पड़ौस में भी सुख हो और उस सुख के सम्पादन में हम अहर्निश यत्नवान् हों। इसी आशय से वेदों में राष्ट्र सुख की प्रार्थनाएं विद्यमान हैं। वहां पर लिखा है कि हमारे में पूर्ण विद्वान और तेजधारी ब्राह्मण हों, शस्त्रधारी वीर क्षत्रिय हमारे राष्ट्र की रक्षा के लिए विद्यमान रहें। हमारे देश में नाना प्रकार के पशु हमारे सुख को बढ़ावें, देवियें सम्मानित रहें और योग्य संतान उत्पन्न करें समय समय पर वर्षा हो और खेती बाड़ी खूब हो। हमारे देश की सब प्रकार की उन्नति होती रहे[1]।

---

१ आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्रीधेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नः ओषधयः पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ यजुर्वेद।

उपरोक्त प्रार्थना ने यह स्पष्ट कर दिया कि देश का सुख विचारवान ब्राह्मणों, वीर क्षत्रियों और वाणिज्य व्यापार खेती आदि में चतुर वैश्यों पर निर्भर है। यदि देश में कोई दुःख है तो यही महानुभाव उसके उत्तरदायी हैं। हमारे भारतवर्ष में पहिले जैसा सुख इस समय नहीं है। इस में अनेक प्रकार के दुःख पैदा होगए हैं और आजकल इस जैसा दुखी देश शायद ढूंढ़ने में भी न मिले। इस के पैंतीस करोड़ मनुष्यों की एक भाषा नहीं, एक विचार नहीं, लाखों और करोड़ों मनुष्यों को पेट भर कर भोजन प्राप्त नहीं होता। इसकी अधिकतर जन संख्या किसान है। उन का टुकड़ा बहुत अनिश्चित है। साल भर परिश्रम करते हैं फिर भी फसल हो या न हो इस का कोई निश्चय नहीं। यदि हुई भी तो इस का मूल्य इतना कम कि सरकारी कर देने के पश्चात् वही कोरे के कोरे। हज़ारों नवयुवक बेकार फिरते हैं। उन्होंने अपने पिताओं का हज़ारों रुपया लगा कर यूनीवर्सिटी की उच्च शिक्षा प्राप्त की। परीक्षाओं की रट्टेबाज़ी में सब स्वास्थ्य से हाथ धो बैठे और पिद्दी से बन गये हैं। वह लोग कागज़ पर कलम घिसने या टाइप राइटर पर उङ्गली फटकारने के ही मर्द हैं, यदि यह न मिला तो भूखे मरते हैं। बहुत से अभागे सम्बन्धियों या अड़ौसी पड़ौसियों के तानों से तंग आकर आत्मघात कर लेते हैं। उन्होंने अपनी भाषा, सभ्यता, भेष और विचारों से नाता तोड़ कर योरोप से दीक्षा ले ली है अतः उनकी शान और खर्च का कोई ठिकाना नहीं। दुकानदारों का इस में भी बुरा हाल है।

हाथ पर हाथ रखे मक्खी मार रहे हैं या एक दूसरे के ग्राहकों को बहकाते रहते हैं।

नवयुवको ! सोचो तो सही, इस हीन अवस्था में कब तक जीवित रह सकोगे। क्या भारतवर्ष जैसी सोना उगलने वाली भूमि के निवासियों की यह गति ठीक है ? बड़े आश्चर्य की बात है कि इस देश के प्रताप से इंगलैंड माला माल हो गया, जापान का घर भर गया, अमेरिका का पेट फूल गया किन्तु क्या कारण है कि हमारे लिये हमारी मातृभूमि के स्तन नित्यप्रति सूख जाते हैं। इस में किसका दोष है हमारा या देश का। कहा करते हैं कि पुत्र डाकू भले ही हो जाय किन्तु माँ डाकिनी नहीं बनती। इसलिये ऐसा न हो कि हम ही भूल करते हों और उस बछड़े की भाँति जो अपनी मां के स्तनों को छोड़ कर अगली टांगों में व्यर्थ मुँह मारता है हम भी अपनी मातृ भूमि के दूध से वंचित हों। यदि विचारा जाय तो बात यही है। हमारी अधोगति का कारण हमारी मूर्खता के अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। यदि हम मूर्खता छोड़ कर देश सेवा के कुछ नियमों पर विचार कर लें और उनको अपने जीवन में धारण कर लें तो अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। गिने दिनों में यह देश फिर सोने की चिड़िया बन सकता है। वह दिन दूर न होगा जब कि आप को फिर संसार अपना गुरु मानने लगेगा। केवल आप लोगों के थोड़ा सा सम्भलने की आवश्यकता है। आपको केवल अपनी मातृभूमि के चार स्तन सम्भालने होंगे फिर दूध की

कमी नहीं रहेगी। वह चार स्तन भाषा, भेष, भोजन और भाव हैं। यदि आप अपने देश की इन चार बातों को अपना लें तो सच जानिये पचास वर्ष के पीछे इस देश जैसा उन्नत और सुखी संसार के परदे पर ढूंढने में भी नहीं मिलेगा। सुनो, इन चारों बातों को स्पष्ट करके समझाते हैं फिर पता लगेगा कि यह बातें देशोन्नति के लिये क्यों आवश्यक हैं।

भाषा

कितने शोक की बात है कि हमारे देश में बीस २ और तीस २ मील पर बोलिएँ बदल जाती हैं। भाषा की भिन्नता के कारण देश तेरह तीन हो रहा है। कोई भाषा ऐसी नहीं है जो कि देश भर की भाषा मानी जा सके। भाषा की एकता के अभाव में एक मदरासी पंजाब में ऐसा निकम्मा हो जाता है जैसे कि जल से बाहिर मछली। गुजराती मनुष्य बंगाली भद्र-पुरुष के भाषण से इतना ही लाभ उठा सकता है जितना कि कोई भेड़ बीणा के बाजे से। सारांश यह है कि साधारण भाषा के न होने से अन्तर्प्रान्तीय सहानुभूति का अभाव है। विदेशियों को अपनी भाषा का बोझ हमारे सिर पर रखने का मौका मिल गया। उसको इतना प्राधान्य मिल गया कि अंग्रेज़ी न जानने वाला मनुष्य इस देश के शिक्षित समुदाय में गिना ही नहीं जाता। यह सब को अखरता है कि अंग्रेज़ी बड़ी भद्दी भाषा है। इसके स्त्रीलिंग, उच्चारण और अधूरे व्याकरण का बखेड़ा बड़े

बड़ों को तंग कर देता है। जिन लोगों का साक्षात् अंग्रेज़ों से सम्बन्ध पड़ता है उनके लिये तो अंग्रेज़ी सीखना, लिखना और बोलना युक्ति-संगत प्रतीत होता है किन्तु एक भारतीय दूसरे भारतीय से अंग्रेजी में बात चीत करे, पत्र व्यवहार करे और अपना निज का हिसाब किताब भी उसी में रखे इससे बढ़ कर दिमाग़ी गुलामी और क्या हो सकती है ? बिगड़ते २ इतने गिर गये कि अपनी मातृ भाषा का एक वाक्य भी शुद्ध नहीं बोल सकते। उनकी वाइफ़ जब उनको कोल्डवाटर देती हैं तब वह ड्रिंक करते हैं पीते कभी नहीं। चाहे आती हो और चाहे न आती हो बीच २ में अंग्रेज़ी की टाँग तोड़ना आज कल के बाबुओं की शान बन गई है। यहाँ तक कि खोंचे वाले भी उनकी लपेट में नहीं बचे। एक बाबू साहिब किसी चीज़ के चार आने लगाते थे दुकानदार ने तुरन्त उत्तर दिया कि "खुशी टेक खुशी नो टेक" आठ आने से कौड़ी कम नहीं होगी।

कोई कह सकता है कि अंग्रेजी बोलने का अभ्यास करेंगे तभी तो समय पड़ने पर बोल सकेंगे। यह बात ठीक है किन्तु अभ्यास के लिये कोई समय नियत कर लो उसमें खूब वक्तृता करो, लेख सुनाओ और वाद विवाद करो। किन्तु जिस समय अंग्रेज़ी बोलो शुद्ध अंगरेजी ही बोलो ऐसा मत कहो कि I do not want दो पैसे वाला प्रकार। और जब अपनी भाषा बोलो तब अंग्रेजी को उसमें मत घुसने दो। इसकी बेहूदगी बड़ी सुगमता से दीख पड़ती है। जब कोई आदमी ऐसा कोट

पहिन कर आवे जिसमें कोई टुकड़ा खद्दर का, कोई मलमल का, कोई मखमल का और कोई नरमे का लगा हो तो आपके लिये बिना पैसे का तमाशा खड़ा हो जावेगा। उस जैसा मूर्ख आप को कहां मिलेगा ? बस इसी तरह भाषा की खिचड़ी बनाना भी मूर्खता है इसका इलाज तब हो सकता है जब कि आप अपनी मातृ भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लें। आपकी मातृ भाषा हिन्दी है। यही भारतवर्ष के सब से अधिक लोगों की भाषा है। इसका साहित्य दिन दुगनी और रात चौगुनी उन्नति कर रहा है। इसको शिक्षा का माध्यम बना कर स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ऊँची से ऊँची शिक्षा देकर दिखा दिया है। और यह भाषा है भी बहुत सरल; जैसा लिखो वैसा पढ़ लो। उर्दू की तरह वेल, बेल और बील का तिगड्डा इस भाषा में नहीं बनता। इसी को आप प्रेम से सीखो और इसी में समाचार पत्र पढ़ा करो। इसी में सम्बन्धियों को पत्र लिखा करो और इसी भाषा के बोलने का अभ्यास रखो। इसमें उर्दू को न घुसने दिया करो। अपने मित्रों से यह मत पूछो कि आप का मिज़ाज़ आनन्द है अपितु ऐसा कहो कि चित्त प्रसन्न है। अपने खयालात का इज़हार मत किया करो बल्कि विचार प्रकट किया करो। सारांश यह कि अपनी मातृ भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लो, फिर आप के लिये प्रत्येक विषय के ज्ञान का भण्डार खुल जायगा और आप अब की अपेक्षा बहुत थोड़े परिश्रम से विद्वान बन जायेंगे। और अंग्रेजी की भाषा पक्षो उन्नति करते

हुए आपका पग २ पर पल्ला नहीं पकड़ेगी।

भेष

भेष भी सेवा और देशोन्नति का एक बड़ा साधन है। इसी के अन्दर हमारी आर्थिक समस्या और जात्यभिमान सम्मिलित हैं। सभा या विवाह आदि के समय जब बहुत से मनुष्य इकट्ठे होते हैं तो कई महात्मा अपना जूता छोड़ कर दूसरे का पहिन जाते हैं। ऐसा करना इस बात का प्रमाण है कि वह अपने जूते को कम मूल्य का समझते और दूसरे को अधिक मूल्य का समझते हैं। इसी तरह जो मनुष्य अपने वेष भूषा को त्याग कर विदेशियों की नकल करते हैं वह अपनी संस्कृति के गौरव को कम करते हैं। जिन की वह नकल करते हैं, वही उनके आदर्श हो जाते हैं। और यह स्वयं सिद्ध है कि असल से नकल कभी बढ़ नहीं सकती। इसलिए काले अंगरेज गोरे अंगरेज़ों को सदा गुलाम ही दीखते हैं चाहे वह कितनी ही उनकी झूठी चाय पीलें। दूसरी बात बे रोज़गारी की है। कल्पना करो चार भाई हैं एक ने कपड़े की दुकान खोली हुई है, एक ने लुहार की, एक ने साबुन की और एक तांगा करता है। उनमें से प्रत्येक यह चाहता है कि ग्राहक किसी विदेश से नहीं आवेंगे उनमें से ही ग्राहक बनें तो एक दूसरे का रोजगार चले। कितने आश्चर्य की बात है कि सबको ग्राहक यहां के चाहिएँ

किन्तु जब किसी को कपड़ा चाहिए तो जापान से मंगा लेते हैं, लोहे का सामान इंगलैंड से, साबुन फ्रांस से और तांगे की जगह अमेरिका की मोटर में सवार हो लेते हैं। तीनों भाई चौथे को भूखा मारने का काम कर रहे हैं तो उनका कैसे निर्वाह हो सकता है। यदि वह एक दूसरे की बिक्री करवाते रहें तो वह पैसा लौट फिरकर वहीं फिर आ सकता है; किन्तु विदेश में गया हुआ पैसा तो कभी फिरता ही नहीं। रोजगार कहीं आकाश में से नहीं टपकता। वह तो आपस के व्यवहार से पैदा होता है। अपने जीवन में काम आनेवाली जो भी वस्तु आप स्वदेशी लेते हैं अपने देश वासियों के लिए जीविका पैदा कर रहे हैं। और उसकी निर्धनता को हटा रहे हैं और यदि वही चीजें विदेशी ले रहे हैं तो मानो अपने भाइयों के मुख का टुकड़ा छीन रहे हैं। जो लोग विदेशी चीज़ों की एजेंसी लिए बैठे हैं, इशतिहार बाज़ी से उन चीज़ों की नई-नई मांग देश में बना रहे हैं वह देश के बड़े भारी शत्रु हैं। भारतवर्ष की बेरोज़गारी के पाप का बहुत भाग उनके सिर पर है। वह अपने थोड़े से पैसों की खातिर देश के हज़ारों मनुष्यों को भूखा मारने का कारण बनते हैं। अतः भारत के नौ निहालो ! थोड़ा खा लेना किन्तु ऐसे पाप की कमाई से बचे रहना, भारत की निर्धनता का एक कारण यह भी है कि यहां के ९० प्रति शतक मनुष्य खेती में लग गए हैं। उपज अधिक कर डालते हैं अतः उसका मूल्य घट

जाता है। इस गाढ़े पसीने की कमाई को कोड़ियों की चीज़ों के साथ बदल लेते हैं। इसमें उनको भारी घाटा रहता है। कहते हैं कि मोटरों के कारखानों में एक मोटर पर एक मनुष्य की दो तीन दिन की मज़दूरी का हिसाब बेठता है। वह मोटर यहां तीन हज़ार रुपये की बिकती है। उस रुपये के एक हज़ार मन गेहूँ यहां से जाते हैं। एक हज़ार मन गेहूँ २०० बीघे भूमि में पैदा होंगे। उसको जोतने के लिए कम से कम आठ हल चाहिएं, इसका अर्थ है कि सोलह बैल और सोलह मनुष्य। उनको साल भर इस भूमि पर काम करना होगा तब कहीं मोटर का मूल्य दे सकेंगे। कितने घाटे का सौदा है। ऐसे ही और चीज़ों में समझना चाहिए। इस बेगार से बचने का यही उपाय है कि खेती को कम करदें और बहुत से मनुष्य उसमें से खाली होकर शिल्प में लग जावें। बहुत सी भूमि बच रहने से देश का गोधन बढ़ जावे और घी दूध फिर अधिक मात्रा में मिलने लग जावे। आप कहेंगे कि कितने बड़े २ मनसूबे बच्चों के सामने बान्धे जा रहे हैं। विद्यार्थियों को इन झगड़ों से क्या वास्ता? यह बात नहीं है, यह सब कुछ आपकी ही हिम्मत पर हो सकेगा। आप स्वदेशी चीज़ों की मांग बढ़ा दें फिर ऊपर का प्रोग्राम अपने आप पूरा हो जावेगा। जब पैसे अधिक मिलते दिखाई देंगे तो लोग अपने आप सौ धन्धों को छोड़कर शिल्प में लग जावेंगे और बूढ़े देश की निर्धनता दूर हो जावेगी।

भोजन

हमारे नव शिक्षित नवयुवकों ने यह भी दिन दिखा दिया कि योरोप के देशों से भारतवर्ष को भोजन, जैसे—बिसकुट, दूध के डब्बे और बहुत से खाद्य पदार्थ भी आने लगे हैं। यह उलटी गंगा भी पहाड़ को चढ़ा ही दी। शोक इस बात का है कि दो पाँव के चौपाए लिख पढ़कर क्यों मूर्ख बने जाते हैं। अपने सब काम यहाँ के लोगों के हाथों से छीन कर विलायत पहुँचा रहे हैं। फिर क्या यहां के लोग हिमालय में सिर मारेंगे, या गंगा में डूब मरेंगे। कल की बात है कि योरोप वालों को सिवाय आलू और नमक के किसी चीज़ के स्वाद का पता भी नहीं था वह आज हमारे बाबू जी के हलवाई बनने लगे हैं। मनों शराब हमारे लोगों के मस्तिष्क को बिगाड़ने लगी है। जैसा अन्न वैसा मन जब इन अभक्ष्य पदार्थों को ग्रहण कर लिया तो दिमाग़ भारतीय कैसे रह सकेगा। इसलिए देश का कल्याण इसी में है कि इस देव-भूमि में उत्पन्न हुए पदार्थों से अपने शरीर का पोषण करो। खाद्य पदार्थ यहां जितने अच्छे और अधिक मात्रा में हैं उतने कहीं नहीं मिलेंगे।

भाव

मनुष्य के जीवन की नींव उसके बिचारों में है। जैसे किसी के विचार होंगे वैसा ही उसका जीवन होगा। हमारे प्राचीन

पूर्वजों के विचारों ने संसार को बहुत काल तक सुखी रखा। आज कल पाश्चात्य देशों में बहुत अशान्ति फैली हुई है उनके पीछे लगकर हमारी भी अधोगति हो रही है। उसका एक मात्र उपाय शास्त्रोक्त जीवन व्यतीत करना है जैसा कि वर्णाश्रम धर्म में बतला दिया हैं। इस प्रकार भाषा, भेष भोजन और भाव स्वदेशी बनाकर आप अपने देश की उन्नति कर सकते हैं। करना न करना आपके आधीन है। परमात्मा आप को सुमति दें।

समाप्तम्